गणितसूत्रम्

(ग्रन्थकारद्वारा विरचित भाषानुवाद तथा व्याख्यासहित)

रचयिता

श्रीगोवर्द्धनमठ - पुरीपीठाधीश्वर - श्रीमज्जगद्गुरु - शङ्कराचार्य

स्वामी निश्चलानन्दसरस्वती

गणितसूत्रम्

(ग्रन्थकारद्वारा विरचित भाषानुवाद तथा व्याख्यासहित)

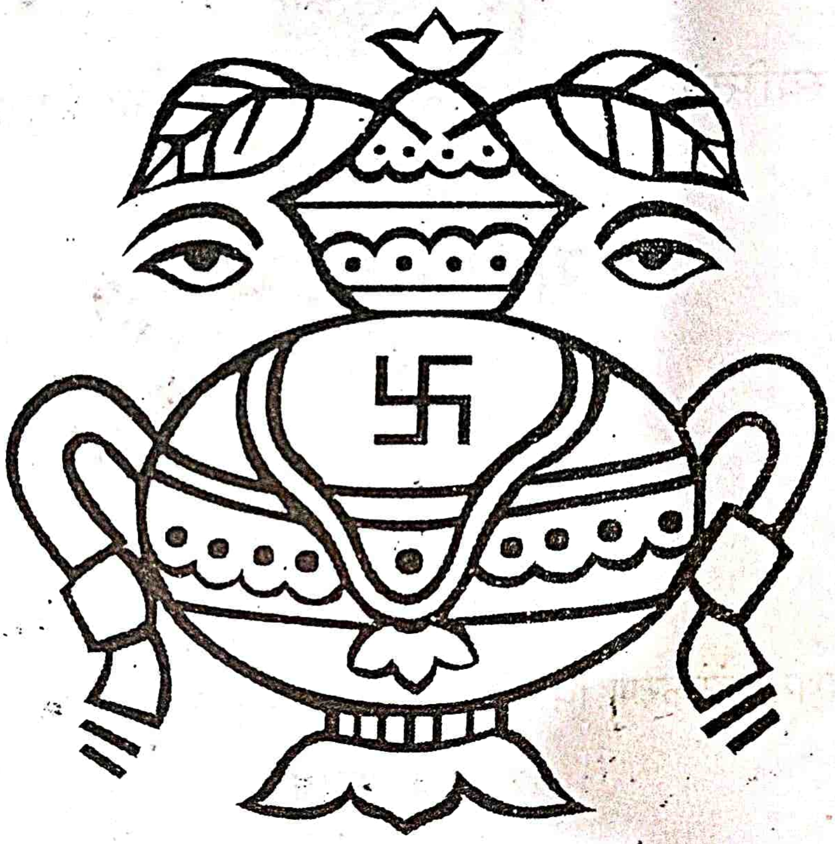

रचयिता

श्रीगोवर्द्धनमठ - पुरीपीठाधीश्वर - श्रीमज्जगद्गुरु - शङ्कराचार्य

स्वामी निश्चलानन्दसरस्वती

श्रीहरिः

श्रीगणेशाय नमः

"स्वस्तिप्रकाशनसंस्थान" - श्रीगोवर्द्धनमठ - पुरीका

९१वाँ पुष्प

गणितसूत्रम्

सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम संस्करण वि. स. २०६९, सन् २०१२

१००० प्रतियाँ

सहयोगराशि

२००.०० (दो सौ रुपये)

स्वस्तिप्रकाशनसंस्थान

श्रीमज्जगद्गुरु-शङ्कराचार्य, गोवर्द्धनमठ, पुरी-७५२००१

(ओडिशा), भारत

श्रीहरि:
श्रीगणेशाय नम:

गणितसूत्रम्

प्राक्कथन

श्रीगोवर्द्धनमठ – पुरीपीठके १४३वें मान्य श्रीमज्जगद्गुरु – शङ्कराचार्य स्वनामधन्य श्रीभारतीकृष्णतीर्थजी महाभागने "**वैदिक गणित**" की संरचना कर सूत्र, विवरण तथा प्रयोगोंके माध्यमसे गणितको रोचकता तथा तीव्रगतिशीलता प्रदान की ।

श्रीगोवर्द्धनमठ – पुरीपीठके १४५वें श्रीमज्जगद्गुरु – शङ्कराचार्य पूज्यपाद स्वामी निश्चलानन्दसरस्वतीजीने अबतक गणितसम्बन्धी आठ ग्रन्थोंकी संरचना की है। उन्होंने इनके माध्यमसे शून्यको प्रथमाङ्क तथा निर्विशेष एकरूप भावाङ्क और एकको सविशेष शून्य सिद्ध कर दोनोंकी अनादिता ख्यापित की है एवम् **संज्ञेयक्रम** (तत्त्वक्रम) की दृष्टिसे ० से

तथा **गणेयक्रम** (गणनायोग्यक्रम) की दृष्टिसे १ से अङ्काम्नायका प्रारम्भ सिद्ध किया है। उन्होंने अङ्कगणित – सम्बन्धी विविध गुप्त तथा सुप्त तथ्योंको उद्भासित कर, तद्वत् अक्षराम्नायके तुल्य गणितको अङ्काम्नाय सिद्ध कर दार्शनिक, वैज्ञानिक और व्यावहारिक धरातलपर, गणितकी आधारशिला एवम् दिशाको सुव्यवस्थित की है।

पूज्यश्रीद्वारा विरचित "**गणितसूत्रम्**" गणित सम्बन्धी, नौवाँ ग्रन्थ है। इसमें कतिपय नवीन तथ्योंके सहित पूर्वके आठ ग्रन्थोंमें सन्निहित अधिकांश भावोंको कुल ३०४ सूत्रोंमें सन्निहित किया गया है। उनमें ०६७ वेदादि शास्त्रोंसे सङ्कलित एवम् २३७ स्वविरचित सूत्र हैं।

अभूतपूर्व तथ्योंका अद्भुतशैलीमें प्रतिपादक होनेके कारण एवम् निर्धारित नियमोंका प्रायोगिकधरातलपर साधक होनेके कारण ग्रन्थकी अपूर्वता और उपयोगिता स्वत:सिद्ध है।

ऋक् – संहिता ४. ५८. ३ का प्रसिद्ध मन्त्र '**चत्वारि शृङ्गा......**' का मान्य आचार्योंने व्याकरण और यज्ञादिसे सम्बद्ध अर्थकर विज्ञ वैयाकरणों और वैदिकोंको प्रमुदित किया है। पूज्यपादने इस ऋचाका गणितसम्बन्धी अर्थ दर्शाकर गणितज्ञोंको प्रमुदित और आश्चर्यचकित करनेका अद्भुत प्रक्रम प्रस्तुत किया है।

मन्त्रार्थवेत्ता एवम् मधुकरसदृश सारप्रस्तोता महर्षियों एवम् मुनियोंने जिस विधासे वैदिक वाङ्मयको समृद्ध किया था, उसीको उद्भासित करनेकी भावनासे पूज्यश्रीने प्रस्तुत ग्रन्थकी संरचना की है।

इस ग्रन्थके धैर्यपूर्वक अनुशीलनसे वैदिक दर्शनकी वैज्ञानिकता तथा व्यावहारिक-धरातलपर उसकी उपयोगिताका परिज्ञान सुनिश्चित है।

"**गणितसूत्रम्**" को चार अध्यायोंमें गुम्फित किया गया है। इसका प्रथम "**अङ्काम्नायाध्याय**", द्वितीय "**परिभाषाध्याय**", तृतीय "**अङ्कधराध्याय**" और चतुर्थ "**द्व्यङ्काध्याय**" है।

इसके प्रथम अध्यायमें १०९ सूत्र हैं; जिनमें ५४ वेदादि शास्त्रोंसे सङ्कलित एवम् ५५ स्वविरचित हैं।

इसके द्वितीय अध्यायमें कुल ४० सूत्र हैं; जिनमें १३ वेदादि शास्त्रोंसे सङ्कलित एवम् २७ स्वविरचित सूत्र हैं।

इसके तृतीय अध्यायमें कुल ९६ सूत्र हैं; जो कि स्वविरचित हैं।

इसके चतुर्थ अध्यायमें कुल ५९ सूत्र हैं; जो कि स्वविरचित हैं।

इस प्रकार "**गणितसूत्रम्**" में १०९ + ४० + ९६ + ५९= ३०४ सूत्र हैं; जिनमें ५५ + २७ + ९६ + ५९= २३७ स्वविरचित एवम् ०६७ वेदादि शास्त्रोंसे सङ्कलित सूत्र हैं।

उक्तरीतिसे वेदादि शास्त्रोंसे सङ्कलित ०६७ एवम् स्वविरचित २३७ सूत्रोंकी कुल सङ्ख्या ३०४ है।

सूत्रसङ्ख्या	१०९ + ४० + ९६ + ५९= ३०४.
स्वविरचित	५५ + २७ + ९६ + ५९= २३७.
सङ्कलित	५४ + १३ + ० + ०= ०६७.

सूत्रसङ्ख्या – स्वविरचित = सङ्कलित ३०४ – २३७= ०६७.

यद्यपि प्रतिपाद्य विषय और प्रतिपादनशैलीकी अपूर्वताके कारण ग्रन्थकी दुर्गमता स्वाभाविक है; तथापि सूत्रार्थकी स्पष्टता, विवरणकी

विशदता और उदाहरण एवम् प्रयोगोंकी प्रचुरताके कारण इसकी सरसता तथा रोचकता भी पर्याप्त है।

सूत्रगणितमें ऋक्; यजुः, अथर्व; कठोपनिषत्, अमृतनादोपनिषत्, योगशिखोपनिषत्, अव्यक्तोपनिषत्, तेजोबिन्दूपनिषत्, माण्डूक्योपनिषत्, प्रणवोपनिषत्, महाभारत, श्रीमद्भगवद्गीता, श्रीमद्भागवत, ब्रह्मपुराण, विष्णुपुराण, मुद्गलपुराण, बृहन्नारदीयपुराण, स्कन्दपुराण, ब्रह्मसूत्र, पाणनीयव्याकरण, साङ्ख्यसूत्र, शुक्रनीति, प्रपञ्चसार, पञ्चदशी और बौद्धागम तथा शाङ्करभाष्यके सूत्रात्मकवचन और अन्तर्निहितभाव सन्निहित हैं। अतः ग्रन्थकी वैदिकार्षता और दार्शनिकता भी स्वतःसिद्ध है।

ग्रन्थके चतुर्थ अध्यायमें बाइनरीसिस्टम (द्वयङ्कपद्धति) का वैदिकार्षस्वरूप सन्निहित है; अतः इसका आधुनिकोंके भी समाकर्षणका केन्द्र सिद्ध होना स्वाभाविक है।

वैदिकार्ष दार्शनिक शैलीमें संस्कृतमें सरल, सरस, सरहस्य सूत्रबद्धता और विषयगत अपूर्वता ग्रन्थकी मौलिकता है।

निकट भविष्यमें संयोग सधने पर ऋग्वेदीय पूर्वाम्नाय श्रीगोवर्द्धनमठ – पुरीपीठके १४३ वें महामहिम श्रीमज्जगद्गुरु– शङ्कराचार्य स्वनामधन्य भारतीकृष्णतीर्थजी महाभागके **'वैदिक गणित'** की सूत्रबद्ध व्याख्याका भाव भी पूज्यपादके हृदयमें सन्निहित है।

परिभाषाध्यायके ४० सूत्रोंके अतिरिक्त २६४ सूत्र वैदिकगणितके **'एकाधिकेन पूर्वेण'**, **'एकन्यूनेन पूर्वेण'**, **'शिष्यते शेषसंज्ञः'**– संज्ञक तीन सूत्रोंकी व्याख्या ही समझने योग्य हैं।

उज्जैननिवासी डॉ. श्रीमोहनगुप्तजीने **''गणितदर्शन''** तथा

''शून्यैकसिद्धि एवम् द्वयङ्कपद्धति'' का अङ्ग्रेजीमें कुशलतापूर्वक अनुवादकर पूज्यपादको परम प्रमुदित किया है।

प्रकाशनसंस्थानको समय – समय पर श्रद्धेय स्वामी डॉ० श्रीगोविन्दानन्दजीका, श्रीमती इन्दिराजी तथा उनके पतिदेव श्रीगौरीशङ्कर राजगढ़ियाजी (पटना) का, श्री.अभयसर्राफजी (देवघर) का, तद्वत् श्रीमती ऋतुगुप्ताजी और उनके पतिदेव श्रीज्ञानगुप्तजी (भुवनेश्वर)का सहयोग सराहनीय है।

श्रद्धेय पण्डित श्रीतेजःपालशर्माजी (पुरी) ने प्रूफशोधनमें योग प्रदानकर पूज्यपादको परम प्रमुदित किया है।

निवेदक

स्वामी श्रीनिर्विकल्पानन्दसरस्वती

निज सचिव

श्रीमज्जगद्गुरु - शङ्कराचार्य

श्रीगोवर्द्धनमठ - पुरी (ओडिशा), भारत.

कार्तिककृष्ण ९ शुक्रवार, २०६८; तदनुसार २१.१०.२०११

श्रीहरिः

श्रीगणेशाय नमः

दिग्दर्शन

ग्रन्थ अपौरुषेय वेद नहीं है: अत: रचयिताका उल्ले[ख] आवश्यक है। तथापि मुझे नहीं लगता कि मैंने किन्हींके भावोंक[ा] अपहरण किया है, या अपने भावोंको लिपिबद्ध किया है। मुझे यही लगता है कि किन्हींके द्वारा प्रेषित भावोंको लिपिबद्ध किय[ा] है।

यद्यपि ग्रन्थकी विश्वस्तरपर उपयोगिता भविष्यके गर्भमें सन्निहित है; तथापि यह बता रहा है कि वह सर्वाश्चर्यमय होनेके कारण यथाशीघ्र सूर्य - चन्द्र - सदृश विश्वस्तरपर उद्भासित होने योग्य है।

निश्चलानन्दसरस्वती

कार्तिककृष्ण १० शनिवार, २०६८; तदनुसार २२.१०.२०११

भूमिका

चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा
द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति
महो देवो मर्त्याँ आ विवेश।।

(ऋक् - संहिता ४. ५८. ३)

"गणितके अधिदैव गणपतिसंज्ञक श्रीमहादेवके योग, ऋण, गुणन तथा भाग – नामक चार शृङ्ग हैं। इसके ' १, ९ और १०' – नामक गतिसाधनरूप तीन पाद हैं और 'अङ्काम्नाय तथा अक्षराम्नाय ' संज्ञक दो सिर हैं। इसके १ और ९ के मध्यवर्ती '२, ३, ४, ५, ६, ७, ८' संज्ञक अर्थसाधक सात हाथ हैं। यह ' देश , काल और वस्तु ' नामक तीन सङ्ख्येय (गणेय) में निबद्ध है। यह गणित अभीष्टवर्षक वृषभ है। यह उच्चारणदशामें शब्दब्रह्मात्मक अक्षराम्नायरूप है। ऐसे गणेशसंज्ञक महादेवका मैं तादात्म्यापन्नभावसे स्मरण, अभिनन्दन, अनुशीलन और अनुगमन करता हूँ।।"

एकादि अङ्क उच्चारणदशामें अक्षर सिद्ध होते हैं । अत एव वैदिक महर्षियोंने व्याकरण तथा तन्त्रके माध्यमसे अङ्कशास्त्रकी अपेक्षा अक्षराम्नायको अधिक समृद्ध बनाया।

यद्यपि तैत्तिरीयोपनिषत् के अनुशीलनसे सहस्र परार्द्ध (१ संलग्न बीस शून्य) – पर्यन्त सङ्ख्याका दिग्दर्शन प्राप्त होता है, ज्योतिषके

माध्यमसे परमाणुकालसे द्विपरार्द्धसंज्ञक महाप्रलयपर्यन्त कालका बोध सुलभ होता है ; शुल्बसूत्रादिके माध्यमसे, तद्वत् वैदिकार्षपद्धतिसे यज्ञकुण्डादिके निर्माणमें रेखागणित सन्निहित है; तथापि गणितको दर्शन तथा तन्त्रकी दृष्टिसे समृद्ध बनाना आवश्यक है।

''गणितसूत्रम्'' को तीन सौ चार सूत्रोंमें चार अध्यायोंमें गुम्फित किया गया है। इसका प्रथम **''अङ्काम्नायाध्याय''**, द्वितीय **''परिभाषाध्याय''**, तृतीय **''अङ्कधराध्याय''** और चतुर्थ **''द्व्यङ्काध्याय''** है।

इसके प्रथम अध्यायमें अक्षराम्नायके तुल्य गणितको अङ्काम्नाय सिद्ध किया गया है तथा अक्षराम्नाय और अङ्काम्नायमें साधर्म्य तथा वैधर्म्यका दिग्दर्शन कराया गया है।

अ ण्।। इ क्।।उ ङ्।। ऋ च्।। लृ द्।। ए म्।। ऐ ञ्।। ओ श्।। औ ष्।। शस्।। अ श स्।। एकादिक्रमेण दश।।

(गणितसूत्रम् ४.४)

''आदिरन्त्येन सहेता'' (१.१.७१) – इस महर्षि पाणिनिविरचित सूत्रके अनुसार प्रत्याहारमें अन्तिम वर्ण इत्संज्ञक है। तद्वत् '' **अ ण्।। इ क्।।उ ङ्।। ऋ च्।। लृ द्।। ए म्।। ऐ ञ्।। ओ श्।। औ ष्।। शस्।। अशस्।।** '' प्रत्याहारमें अन्तिम वर्ण '' **ण्, क्, ङ्, च्, द्, म्, ञ्, श्, ष्, स्, स्।** '' इत्संज्ञक हैं। इत्संज्ञक ण् – आदिसे किसी अङ्कका ग्रहण नहीं किया गया है। **अण् – प्रत्याहारमें अ एकका वाचक है।** शस् – प्रत्याहारमें 'श' शून्यका द्योतक है।। **अ श स्** – प्रत्याहारमें 'अ' एकका और 'श' शून्यका ख्यापक होनेके कारण 'अश' दसका द्योतक है। प्रत्याहारक्रमसे अङ्कविमर्श इस प्रकार है। –

अ	इ	उ	ऋ	लृ	ए	ऐ	ओ	औ	श
१	२	३	४	५	६	७	८	९	०

अश	इश	उश	ऋश	लृश	एश	ऐश	ओश	औश
१०	२०	३०	४०	५०	६०	७०	८०	९०

तुल्यविधाका अनुगमन अग्रिम चरणोंमें भी कर्त्तव्य है।

अश^{१} = १०^{१} = १०.

अश^{२} = १०^{२} = १००.

अश^{३} = १०^{३} = १०००.

अश^{४} = १०^{४} = १००००.

वैदिक प्रस्थानमें 'ओम्'को वेदोंका बीज माना गया है। ओङ्कारमें समग्र अक्षराम्नाय सन्निहित है। 'अ, उ, म्' – ये प्रणवसंज्ञक ओङ्कारके तीन विभाग हैं। 'अ' वर्णाम्नायगत प्रथमाक्षर है। 'उ' मध्यमाक्षर है। 'म्' स्पर्शवर्णका अन्तिमाक्षर है। तद्वत् गणेय क्रमसे १ प्रथमाङ्क है। ९ मध्यमाङ्क है। ० अन्तिमाङ्क है। १ + +९ = १० में संलग्नता सिद्धान्तकी दृष्टिसे १ का स्थानापन्न १ ही है तथा ९ का स्थानापन्न ० परिलक्षित है। १० + १ = ११में शून्यका पर्यवसान १ है। १ + १ = २, २ + १ = ३, ३ + १ = ४, ४ + १ = ५, ५ + १ = ६, ६ + १ =

७, ७ + १ = ८, ८ + १ = ९की दृष्टिसे १ का पर्यवसान ९ है।

उक्त रीतिसे १,९ और ० का चक्रावर्त्त अङ्काम्नायमें १९० ओङ्कार है ।

अक्षराम्नायगत दशमलवपद्धतिके अनुस्वार "अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ऐ, ओ, औ, अं" में औके बाद दसवें स्थानपर "अ"के साथ "ं" (अनुस्वार) सन्निहित है, जैसा कि "अ इ उ ण्, ऋ लृ क्, ए ओ ङ्, ऐ औ च्" के अनुशीलनसे सिद्ध है। तद्वत् अङ्काम्नायगत दशमलवपद्धतिके अनुसार १, २ , ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९ , १० में दसवें स्थानपर १ के साथ ० (शून्य) सन्निहित है।

अनुस्वार निर्विशेष होनेसे अक्षरोंका मूल है। उसकी अभिव्यक्ति प्रथमाक्षर अकारके सहित दसवें स्थानपर होती है। तद्वत् शून्य निर्विशेष होनेसे अङ्कोंका मूल है। उसकी अभिव्यक्ति प्रथमाङ्क एकके सहित दसवें स्थानपर होती है।

अं > १०.

तन्त्रशास्त्रों में अङ्गन्यासादिके सन्दर्भमें अकारादि और ककारादि अनुस्वारयुक्त प्रयुक्त होते हैं । इस तथ्यके अनुशीलनसे अनुस्वारको सर्वानुगत वर्ण माननेका मार्ग प्रशस्त होता है ।

भगवत्पाद श्रीशिवावतार शङ्कराचार्यमहाभाग विरचित '**प्रपञ्चसार**' (तृतीयपटल ४-७) के अनुसार अ, इ, उ, और बिन्दु 'ं' पुल्लिङ्ग मान्य हैं । अत: केवल बिन्दुकी स्वतन्त्र स्वरसंज्ञा चरितार्थ है ।

किसी भी वस्तुकी समुत्पत्ति किसी देश तथा कालमें होती है। देशगणना, कालगणना तथा वस्तुगणनामें सङ्ख्याकी उपयोगिता सुनिश्चित है। अत: गणितकी उपयोगिता अकुण्ठित है।

गणितजगत् में व्याप्त दशमलवपद्धति वेदोंकी अद्भुत देन है।

वैदिक वाङ्मयमें देश, काल, वस्तु - गणनामें दश - प्रभेदका अद्भुत महत्त्व है। प्राची, आग्नेयी, दक्षिण, नैर्ऋति, प्रतीची, वायवी, उदीची, ईशानी, ऊर्ध्व, अध: - संज्ञक दिशाके दश प्रभेद हैं।

कालसे सम्बद्ध लट् (वर्तमान Present tense), लोट् (आज्ञार्थक Imperative mood), लङ् (अनद्यतन भूत Past imperfect tense), लिङ् (आशी: Benedictive, विधि Potential mood), लिट् (परोक्ष भूत Past perfect tense), लुट् (अनद्यतनभविष्य First Future), लृट् (सामान्यभविष्य Simple Future), लुङ् (सामान्य भूत Aorist), लृङ् (क्रियातिपत्ति Conditional), लेट् (वेदोंमें प्रयुक्त) -संज्ञक दश लकार (विभक्ति) हैं ।

भ्वादि, अदादि, जुहोत्यादि, दिवादि, स्वादि, तुदादि, रुधादि, तनादि, क्र्यादि तथा चुरादि दश गण होते हैं।

१०, १००, १००० आदि सङ्ख्याक्रममें अट्ठारहवें स्थानपर सन्निहित परार्द्धपर्यन्त उत्तरोत्तर दशगुण वृद्धि है।

पृथिवीसे जल - तेज-वायु-आकाश-अहम्-महत् तथा अव्यक्तरूप सप्तावरणमें उत्तरोत्तर दशगुणताकी मान्यता है । -

"दशोत्तराधिकैर्यत्र प्रविष्ट: परमाणुवत्।"

(श्रीमद्भागवत ३.११.४०)।

पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश - संज्ञक पञ्च स्थूलभूत एवम् गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द-तन्मात्र-संज्ञक पञ्च सूक्ष्मभूतकी दृष्टिसे दस भूत सिद्ध होते हैं । वाक्, पाणि, पाद, पायु और उपस्थ - नामक पञ्च कर्मेन्द्रियाँ हैं । श्रोत्र, त्वक्, नेत्र, जिह्वा और नासिका-नामक पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ हैं । अग्नि, इन्द्र, उपेन्द्र, प्रजापति, मृत्यु - नामक पञ्च कर्मेन्द्रियोंके अधिदैव हैं। दिक्, वायु, सूर्य, वरुण तथा अश्विनी (नासत्य, दस्र) - नामक पञ्च

ज्ञानेन्द्रियोंके अधिदैव हैं। इस प्रकार दस इन्द्रियाँ हैं। प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान – संज्ञक पञ्च प्राण हैं। नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त तथा धनञ्जय – संज्ञक पञ्च उपप्राण हैं। इस प्रकार दशविध प्राण हैं। इडा, पिङ्गला, सुषुम्णा, गान्धारी, हस्तिजिह्वा, पूषा, यशस्विनी, अलम्बुसा, कुहू, शङ्खिनी नामक दस प्राणवाहिनी नाडियाँ हैं। मन, बुद्धि, चित्त, अहम् और अनुसन्धानात्मक अन्तःकरणके पाँच विभाग हैं। प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति – अन्तःकरणकी पाँच वृत्तियाँ हैं। इस प्रकार वृत्तियोंके सहित अन्तःकरणके दश प्रभेद हैं। चिणि, चिञ्चिणि, घण्टा, शङ्ख, तन्त्री, ताल, वेणु, मृदङ्ग, भेरी तथा मेघ – नामक दश नाद हैं।

हाथोंमें दस उँगलियाँ और पाँवोंमें दस उँगलियाँ हैं। श्रीमद्भागवत २.१०.१–७ के अनुसार महापुराणोंमें सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण, ऊति, मन्वन्तर, ईशानुकथा, निरोध, मुक्ति और आश्रयरूप पुराणोंके दश लक्षण माने गये हैं।

उक्त रीति से वस्तुप्रभेदकी दृष्टिसे भी दशमलवपद्धतिका वैदिक वाङ्मयमें अद्भुत महत्त्व है।

ध्यान रहे, सर्वेश्वरने सृष्टिसंरचनामें दशमलव–पद्धतिका सर्वत्र उपयोग और प्रयोग किया है। यह सृष्टि दशमलवपद्धतिकी प्रशस्त व्याख्या है।

"दशमस्त्वमसि" – "दसवाँ तू है" की दर्शनोक्तिके अनुशीलनसे वैदिक और वेदानुकूल लौकिक प्रस्थानमें दशमलवपद्धतिका उत्कर्ष सिद्ध होता है।

एका च मे तिस्रश्च मे पञ्च च मे सप्त च मे नव च मे ....॥

(वाजसनेयिमाध्यन्दिन-शुक्लयजुर्वेदसंहिता १८. २४)

उक्त होमार्थ प्रयुक्त कण्डिकाके अयुग्मस्तोम मन्त्रोंमें एक, तीन, पाँच, सात आदि क्रमसे विषम सङ्ख्याका निरूपण है। एक और तीनके मध्यमें दो, तीन और पाँचके मध्यमें चार, पाँच और सातके मध्यमें छह, सात तथा नौके मध्यमें आठ – संज्ञक सम सङ्ख्याका एकके अन्तरालसे अनुल्लेख है। सर्वप्रथम एकका उल्लेख गणनाकी दृष्टिसे एकको प्रथम अङ्क सिद्ध करता है।

चतस्रश्च मेऽष्टौ च मे द्वादश च मे षोडश च मे विंशतिश्च मे ....॥

(वाजसनेयिमाध्यन्दिन-शुक्लयजुर्वेदसंहिता १८. २५)

उक्त होमार्थ प्रयुक्त कण्डिकाके युग्मस्तोम मन्त्रोंमें चार, आठ, बारह, सोलह, अट्ठारह, बीस आदि सम सङ्ख्याका उल्लेख और मध्यवर्ती पाँच, छह, सात तथा नौ, दस, ग्यारह और तेरह, चौदह, पन्द्रह और सत्रह, अट्ठारह, उन्नीस आदि तीन – तीन सङ्ख्याका अनुल्लेख है। पूर्वोक्त रीतिसे एकसे सङ्ख्याका प्रारम्भ माननेपर एक और चारके मध्य दो और तीन केवल दो अङ्कोंका व्यवधान सिद्ध होता है। ऐसी स्थितिमें स्थानकी दृष्टिसे शून्यसे गणनाका प्रारम्भ अनिवार्य है।

उक्त रीतिसे शून्यकी प्रथमाङ्कता वेद-सिद्ध है।

० से भी किसी अङ्कको न्यून माननेपर

१. उत्तराङ्ककी अपेक्षा पूर्वाङ्क सविशेष भावाङ्क होता है। अतः शून्यको भावाङ्क माननेकी विवशता होगी, जो कि आधुनिक गणितज्ञोंको अमान्य है।

२. अङ्कमूलकी सिद्धि असम्भव होगी। कारण यह है कि १, २, ३, ४.....की तरह – १, –२, –३, –४....का प्रवाह असङ्ख्यपर्यन्त प्राप्त होगा। तथापि समुद्रके स्तरसे नीचे या ऊपरके समान ० से न्यून या अधिक

कहनेकी अनिवार्यता होगी। अभिप्राय यह है कि अङ्कोंका उत्कर्षापकर्ष शून्यसापेक्ष ही मान्य होगा।

वस्तुतः ३ − १ = २, २ − १ = १ स्थलोंमें न्यूनताके द्योतक २ तथा १ ऋणचिह्नित नहीं होते। तद्वत् ३ + २ = ५, ४ + २ = ६ में अधिकताके द्योतक ५ तथा ६ भी ऋणचिह्नित नहीं होते।

वस्तुतः २ − ३ = −१का अभिप्राय '३ से दो एक अङ्क न्यून' है, १ − २ = −१ का अभिप्राय '२ से एक एक अङ्क न्यून' है; तद्वत् ० − १ = −१ का अभिप्राय '१ से शून्य एक अङ्क न्यून है' ही सिद्ध है।

३. १, २, ३ आदिके अतिरिक्त ऋणचिह्नित अङ्ककी भी स्वतन्त्र अङ्करूपमें मान्यता होगी।

४. **"मूले शून्यं विजानीयात् । शून्यं वै परं ब्रह्म ।"** (गणेशपूर्वतापिन्युपनिषत् ३.१), **"अशून्यं शून्यभावं तु"** (तेजोविन्दूपनिषत् १.१०)– "शून्यभाव वस्तुतः सर्व मूल परब्रह्मस्वरूप भावात्मक है, वह अभावात्मक नहीं है।" आदि श्रौतसिद्धान्त बाधित होगा। जिसके फलस्वरूप अङ्काम्नाय दिशाहीन व्यापारतन्त्रमात्र सिद्ध होगा ।

५. गणितज्ञोंका आकलन त्रुटिग्रस्त होगा, जिसके फलस्वरूप सम्बन्धित विज्ञान तथा कार्यक्षेत्र विध्वंसक सिद्ध होगा।

६. ० − १ = −१ को सैद्धान्तिक माननेपर **"शिष्यते शेषसंज्ञः"** (श्रीमद्भागवत १०.३.२५)के अनुसार अवशिष्ट भावरूपताकी शेषसंज्ञा है – इस वैदिकी परिभाषाका तिरस्कार होगा। जिसके फलस्वरूप गणित युक्तिविहीन उन्मत्तोंका अनर्गल प्रलापमात्र सिद्ध होगा।

७. इकाईसे दहाई, दहाईसे सैकड़ा, सैकड़ासे हजार आदि उत्तरवर्ती अङ्कोंका उत्तरोत्तर मान अधिक मान्य हैं। १०, १०२, १०२३ आदि या १०, १००, १००० आदि स्थलोंमें शून्य

इकाई, दहाई, सैकड़ा आदि क्रमसे सन्निहित है; अतः शून्यकी एकादिकी अपेक्षा न्यूनता तथा एकादिकी शून्यकी अपेक्षा अधिकता सिद्ध है। अभिप्राय यह है कि गणनाप्रक्रममें इकाई, दहाई, सैकड़ा, हजार आदि स्थलोंमें प्रयुक्त शून्यका उत्तरवर्ती वामाङ्क एकादि होता है। वह ऋणाङ्कघटित नहीं होता और शून्यकी अपेक्षा अधिक ही होता है; न कि शून्यसे न्यून।

८. ३ − १ = २, २ − १ = १, १ − १ = ० के अनुशीलनसे शून्यकी प्रथमाङ्कता तथा एकसे एक अङ्क न्यूनता चरितार्थ है।

९. ९ − ९ = ०, ८ − ८ = ०, ७ − ७ = ०, ६ − ६ = ०, ५ − ५ = ०, ४ − ४ = ०, ३ − ३ = ०, २ − २ = ०, १ − १ = ० के अनुशीलनसे यह तथ्य सिद्ध है कि शून्य किसी भी अङ्कसे उतने ही अङ्क पूर्व है। समानवाचोयुक्तिसे ०−० = ० के अनुशीलनसे यह तथ्य सिद्ध है कि शून्यके पूर्व शून्य ही है, अर्थात् शून्यके पूर्व कोई अन्य अङ्क नहीं है।

१०. (−३) −(−३) = −६, (−२) − (−२) = −४, (−१) − (१) = −२ के अनुशीलनसे यह तथ्य सिद्ध है कि वस्तुतः ऋणाङ्कघटित अङ्कका शून्य पूर्ववर्ती अङ्क नहीं है। अतः ० − १ = −१ के अनुशीलनसे यह तथ्य सिद्ध है कि १ शून्यका उत्तराङ्क है।

११. (−३) + ३ = ०, (−२) + २ = ०, (−१) + १ = ० के अनुशीलनसे यह तथ्य सिद्ध है कि शून्योत्तर तीन आदिसे उसीका ऋण करनेपर शेष ० रहता है।

यद्यपि गणनाकी दृष्टिसे एककी प्रथमाङ्कता मान्य है, तथापि दो अङ्कोंकी सबसे छोटी सङ्ख्या ११ अमान्य है, जब कि १० मान्य। १० में ० इकाईस्थानापन्न है और १ दहाईस्थानापन्न; जो कि एक अङ्ककी सबसे

छोटी सङ्ख्या एक और एक अङ्ककी सबसे बड़ी सङ्ख्या ९ के योगसे निष्प
है। कदाचित् नौके पश्चात् शून्यकी स्थिति होती, तब एक अङ्ककी सब
छोटी सङ्ख्या १ तथा एक अङ्ककी सबसे बड़ी सङ्ख्या ० के योगसे १ व
ही निष्पत्ति होती है। वैसी स्थितिमें दो अङ्कोंकी सबसे छोटी सङ्ख्या १०
स्थानपर ०१ की सिद्धि होती।

उक्त हेतुओंसे ० को निर्विशेषात्मक अङ्कमूल तथा १ को सविशेषात्म
अङ्कमूल माननेकी आवश्यकता है। दर्शन जगत् में सन्निकट सविशेषक
कार्य तथा सन्निकट निर्विशेषकी कारण या मूल संज्ञा है। यथा शब्द तथ
स्पर्श – संज्ञक दो विशेषताओंसे सम्पन्न वायुकी अपेक्षा केवल शब्दरू
एक विशेषतासम्पन्न आकाश आपेक्षिक निर्विशेष होनेके कारण वायुक
कारण अर्थात् मूल है। शब्दरहित आकाशका भी मूल अशब्द – अस्पर्शी
ब्रह्म है। तद्वत् २ का मूल १ और १ का मूल ० है। उस सर्वाङ्कमूल
का कोई मूल नहीं है। एकादिमें उसकी अभिव्यञ्जकता है । यह तथ्य १०
२०, ३० आदिके अनुशीलनसे सिद्ध है। सूर्य तथा चन्द्रके योगसे राहुक
तद्वत् काष्ठादिके योगसे अग्निकी अभिव्यक्तता इस सन्दर्भमें युक्त दृष्टान
है ।

'पूर्वाङ्ककी उत्तराङ्कमें अनुगति' इस अकाट्य सिद्धान्तके बलप
० की एकादिमें अनुगति सम्भावित है। परन्तु एकादिकी उत्तराङ्क
साक्षात् अनुगतिके तुल्य यदि शून्यकी एकादिमें अनुगति सिद्ध हो, तब
शून्यकी चरम शेषसंज्ञक अव्ययरूपता असिद्ध होनेके कारण उसकी
अनादि अङ्कमूलता भी असिद्ध हो। अतः एकादिमें शून्यकी अनुगतिके
प्रकारका अनुशीलन अपेक्षित है। **'एकाधिकेनोत्तराङ्कः'**(गणितसूत्रम्
१८), **'एकन्यूनेन पूर्वाङ्कः'**(गणितसूत्रम् १९) – 'एकाधिकसे उत्तराङ्क',
'एकन्यूनसे पूर्वाङ्क' की गाथा इस सन्दर्भमें क्रियान्वित हो सकती है। १

+ १ = २, १ + १ + १ = ३ की शैलीमें ० + १ = १, ० +
१ + १ = २ के क्रमसे शून्यकी एकादिमें अनुगति सिद्ध है। ० + १
= १, ० + २ = २, ० + ३ = ३ के अनुशीलनसे यह तथ्य सिद्ध है
कि एक शून्यसे एक अङ्क, दो शून्यसे दो अङ्क, तीन शून्यसे तीन अङ्क
उत्तर है । तद्वत् १ – १ = ०, २ – २ = ०, ३ – ३ = ० के
अनुशीलनसे यह तथ्य सिद्ध है कि ० एकसे एक अङ्क, दोसे दो अङ्क,
तीनसे तीन अङ्क न्यून अर्थात् पूर्वाङ्करूप प्रथमाङ्क है।

सन्निकट निर्विशेषकी सविशेषमें अनुगति मान्य है। यथा; ब्रह्मकी
आकाशमें, आकाशकी वायुमें, वायुकी तेजमें, तेजकी जलमें, जलकी
पृथ्वीमें अनुगतिके तुल्य ० की १ में, १ की २ में, २ की ३ में, ३ की ४ में,
४ की ५ में, ५ की ६ में, ६ की ७ में, ७ की ८ में, ८ की ९ में, ९ की १०
में अनुगति सिद्ध है।

कदाचित् ० + ० = १ होता, तब निस्सन्देह शून्यका मान
$\frac{1}{2}$ होता। अत एव शून्य सविशेष होनेके कारण अङ्कोंका मूल न होता।

यदि एक ही गणना तथा स्थान दोनोंकी दृष्टिसे प्रथमाङ्क सिद्ध हो,
तब दो अङ्कोंकी सबसे छोटी सङ्ख्या ११ सिद्ध हो, न कि १०, तद्वत् तीन
अङ्कोंकी सबसे छोटी सङ्ख्या १११ सिद्ध हो, न कि १००। परन्तु ऐसा
माननेपर दशमलवपद्धतिका लोप सुनिश्चित हो। यदि एक अङ्ककी सबसे
छोटी सङ्ख्या ० ही मान्य हो, तब दो अङ्कोंकी सबसे छोटी सङ्ख्या ०० अर्थात्
शून्य ही सिद्ध हो। अतः गणनाकी दृष्टिसे ० को और स्थानकी दृष्टिसे ०
को प्रथमाङ्क मानना आवश्यक है। अतएव दो अङ्कोंकी सबसे छोटी सङ्ख्या
१० स्थान तथा अङ्कनका युग्मरूप है। तथापि १० में ० इकाई – स्थानापन्न
होनेके कारण प्रथमाङ्क मान्य है। इकाईस्थानापन्न ० तथा दहाईस्थानापन्न

१ का योग १० + १ = ११ है।

योज्य तथा याजकोंका संयोग योग है।

१. ० + ९ = ९,

२. १ + ८= ९,

विश्लेष ऋण है।

१. ७ – ० = ७,

२. ८ – १ = ७,

गुण्यका गुणनवार (गुणक सङ्ख्याके अनुरूप) प्रयोग गुणन है यथा, – = २ × ३ =६ अर्थात् २+२+ २= ६.

अथवा गुणकके अनुरूप गुण्यकी आवृत्तिका मेलन गुणन है। २ × १ = २.

भाज्यमें भाजककी अनुगतिका तथा अवशेषसिद्धिका समुल्लेख भाग है।

६) ६ (१
६
—
०

अङ्कोंका अन्तरालसहित तथा रहित क्रमसे अङ्कनका प्रकार अङ्कधर (पहाड़ा) है।

अतएव अङ्कधर अन्तरालसहित तथा रहित भेदसे दो प्रकारका है।

एकादि सङ्ख्याका क्रमिक अङ्कन अन्तरालरहित अङ्कधर है। २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १० आदिका अङ्कधर सान्तराल अङ्कधर है।

एकादिसे गुणित एकादिसे अन्तरालक्रमसहित अङ्कधरकी सिद्धि होती है।

१ × १ = १, १ × २ = २: २ × १ = २, २ × २ = ४, ३ × १ = ३, ३ × २ = ६ ; ४ × १ = ४, ४ × २ = ८; ५ × १ = ५, ५ × २ = १०, ५ × ३ = १५, ५ × ४ = २०, ५ × ५ = २५, ५ × ६ = ३०, ५ × ८ = ४०, ५ × ९ = ४५, ५ × १० = ५०.

तुल्यविधाका अनुवर्तन अग्रिम चरणोंमें भी कर्त्तव्य है।

क्रमशः दस चरणोंमें एकादिके योगसे अङ्कधरकी सिद्धि होती है।

यथा; ० + १= १, १ + १ = २, २ + १ = ३, ३ + १ = ४, ४ + १ = ५, ५ + १ = ६, ६ + १ = ७, ७ + १ = ८, ८ + १ = ९ , ९ + १ = १०.

२, २+२=४ , ४ + २ = ६, ६ + २ = ८, ८ +२ =, १०, १० + २ = १२, १२ + २ = १४ , १४ + २ = १६ , १६ + २ = १८ , १८ + २ = २०.

३, ३+३ = ६, ६+ ३ = ९, ९ + ३ = १२, १२ + ३ = १५ , १५ + ३ = १८, १८ + ३ = २१, २१+ ३ = २४, २४ + ३ = २७, २७ + ३ = ३०.

तुल्य क्रमका अनुवर्तन अग्रिम चरणोंमें भी कर्त्तव्य है।

अभिप्राय यह है कि एक, दो, तीन आदि अङ्कोंमें जिसका अङ्कधर बनाना हो, उससे क्रमशः एकसे दसतकके गुणनसे अङ्कधरकी सिद्धि होती है।

प्रकृतमेकेंन युञ्जीयात् ।। (गणितसूत्रम् १६२)

"प्राप्त एकसे प्राप्तको जोड़े।"

अभिप्राय यह है कि

(१) एकाधिकसे उत्तराङ्कको प्राप्त करता चले।

(२)एकसे दसतकके अङ्कोंसे विनिर्मित एकके वर्गको प्राप्त एक वर्गकि क्रमिक एकादिको जोड़कर सान्तराल ग्यारहसे बीसका द्वितीय व प्राप्त करे। तद्वत् प्राप्त सान्तराल दोसे बीसतकके द्वितीय वर्गको एक वर्गकि क्रमिक एकादिसे जोड़कर सान्तराल तीनसे तीसतक तृतीय व प्राप्त करे। इस प्रकार, प्रथम वर्गकि क्रमिक एकादिके योगसे प्राप्त वर्ग सान्तराल उत्तरवर्ती वर्ग बनाता चले।

१ + १ = २;   २ + १ = ३;.....

२ + २ = ४; ४ + २ = ६;......

३ + ३ = ६; ६ + ३ = ९; .....

(३)जिस सङ्ख्याका अङ्कधर (पहाड़ा)बनाना हो, उसके दहा आदि क्रमसे अन्तिम अङ्कको एकाधिक कर धन – ऋणाङ्कमें इकाई आदि स्थानपर शून्यसंलग्न धनाङ्कको प्राप्त कर , उसे पृथक् से अङ्कित करे।

यथा;

दहाई – रहित १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९ को दहाई - स्थानापन्न शून्यसे संलग्न करे। ०१, ०२, ०३, ०४, ०५, ०६, ०७ ०८, ०९ में दहाई – स्थानापन्न शून्यको एकाधिक अर्थात् एक करें। तद्वत् १० में दहाई – स्थानापन्न १ को एकाधिक अर्थात् २ करे। तद्वत् ९९ में दहाई – स्थानापन्न ९ को एकाधिक अर्थात् १०० करे। तद्वत् ६७८ में सैकड़ा – स्थानापन्न ६ को एकाधिक अर्थात् ७ करे।

१	०१
२	०२
३	०३
४	०४
५	०५

६	०६
७	०७
८	०८
९	०९
१०	२०
९९	१००
६७८	७७८

तदनन्तर दहाई, सैकड़ा आदि – स्थानापन्न अङ्कको धनाङ्क और अतिरिक्त इकाई आदिके स्थानापन्न शून्य या शून्योंको सम्भावित ऋणाङ्कके स्थानापन्न धनाङ्क समझे। तदनन्तर जिस सङ्ख्याका अङ्कधर (पहाड़ा) बनाना हो, उसके एकाधिक चरमाङ्कके अतिरिक्त इकाई – स्थानापन्न अङ्कका मित्राङ्क १०को मानकर उसे १० से ऋणकर शेष अङ्कको इकाई – स्थानापन्न शून्यके स्थानपर ऋणाङ्क करे। तत्पश्चात् तदनन्तर जिस सङ्ख्याका अङ्कधर (पहाड़ा) बनाना हो, उसके एकाधिक चरमाङ्कके अतिरिक्त अवशिष्ट दहाई आदि – स्थानापन्न अङ्कोंका मित्राङ्क ९ को मानकर दहाई, सैकड़ा आदि – स्थानापन्न अङ्कको क्रमशः ९ से ऋणकर शेषको दहाई, सैकड़ा आदि – स्थानापन्न शून्यके स्थानपर ऋणाङ्क करे। दहाई, सैकड़ा आदि – स्थानापन्न धनसङ्ख्यासे ऋणसङ्ख्याके ऋणफलको अभिमत अङ्कधरका आधाराङ्करूप प्रथम चरण समझे।

जिन दो अङ्कोंका योग १० होता है, वे १० तथा ०; ९ और १; ८ एवम् २ ; ७ तथा ३; ६ और ४; ५एवम् ५ परस्पर मित्राङ्क होते हैं। तद्वत् जिन दो अङ्कोंका योग ९ होता है, वे ९ तथा ०; ८ और १; ७ एवम् २ ; ६ तथा ३; ५ और ४; परस्पर मित्राङ्क होते हैं। यथा;

(२)एकसे दसतकके अङ्कोंसे विनिर्मित एकके वर्गको प्राप्त एक
वर्गके क्रमिक एकादिको जोड़कर सान्तराल ग्यारहसे बीसका द्वितीय व
प्राप्त करे। तद्वत् प्राप्त सान्तराल दोसे वीसतकके द्वितीय वर्गको एक
वर्गके क्रमिक एकादिसे जोड़कर सान्तराल तीनसे तीसतक तृतीय व
प्राप्त करे। इस प्रकार, प्रथम वर्गके क्रमिक एकादिके योगसे प्राप्त वर्ग
सान्तराल उत्तरवर्ती वर्ग बनाता चले।

१ + १ = २; २ + १ = ३;.....

२ + २ = ४; ४ + २ = ६;......

३ + ३ = ६; ६ + ३ = ९; .....

(३)जिस सङ्ख्याका अङ्कधर (पहाड़ा)बनाना हो, उसके दह
आदि क्रमसे अन्तिम अङ्कको एकाधिक कर धन – ऋणाङ्कमें इकाई आदि
स्थानपर शून्यसंलग्न धनाङ्कको प्राप्त कर, उसे पृथक् से अङ्कित करे।

यथा;

दहाई – रहित १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९ को दहाई
स्थानापन्न शून्यसे संलग्न करे। ०१, ०२, ०३, ०४, ०५, ०६, ०७
०८, ०९ में दहाई – स्थानापन्न शून्यको एकाधिक अर्थात् एक करे। तद्व
१० में दहाई – स्थानापन्न १ को एकाधिक अर्थात् २ करे। तद्वत् ९९
में दहाई – स्थानापन्न ९ को एकाधिक अर्थात् १०० करे। तद्वत् ६७८
में सैकड़ा – स्थानापन्न ६ को एकाधिक अर्थात् ७ करे।

१	०१
२	०२
३	०३
४	०४
५	०५

६	०६
७	०७
८	०८
९	०९
१०	२०
९९	१००
६७८	७७८

तदनन्तर दहाई, सैकड़ा आदि – स्थानापन्न अङ्कको धनाङ्क और अतिरिक्त इकाई आदिके स्थानापन्न शून्य या शून्योंको सम्भावित ऋणाङ्कके स्थानापन्न धनाङ्क समझे। तदनन्तर जिस सङ्ख्याका अङ्कधर (पहाड़ा) वनाना हो, उसके एकाधिक चरमाङ्कके अतिरिक्त इकाई – स्थानापन्न अङ्कका मित्राङ्क १०को मानकर उसे १० से ऋणकर शेष अङ्कको इकाई – स्थानापन्न शून्यके स्थानपर ऋणाङ्क करे। तत्पश्चात् तदनन्तर जिस सङ्ख्याका अङ्कधर (पहाड़ा) बनाना हो, उसके एकाधिक चरमाङ्कके अतिरिक्त अवशिष्ट दहाई आदि – स्थानापन्न अङ्कोंका मित्राङ्क ९ को मानकर दहाई, सैकड़ा आदि – स्थानापन्न अङ्कको क्रमशः ९ से ऋणकर शेषको दहाई, सैकड़ा आदि – स्थानापन्न शून्यके स्थानपर ऋणाङ्क करे। दहाई, सैकड़ा आदि – स्थानापन्न धनसङ्ख्यासे ऋणसङ्ख्याके ऋणफलको अभिमत अङ्कधरका आधाराङ्करूप प्रथम चरण समझे।

जिन दो अङ्कोंका योग १० होता है, वे १० तथा ०; ९ और १; ८ एवम् २ ; ७ तथा ३; ६ और ४; ५एवम् ५ परस्पर मित्राङ्क होते हैं। तद्वत् जिन दो अङ्कोंका योग ९ होता है, वे ९ तथा ०; ८ और १; ७ एवम् २ ; ६ तथा ३; ५ और ४; परस्पर मित्राङ्क होते हैं। यथा;

$$(१)\ \frac{१०}{०१}, \frac{१\bar{९}}{०१} = १० - ९ = ०१.$$

$$(२)\ \frac{१०}{०९}, \frac{१\bar{१}}{०९} = १० - \bar{१} = ०९.$$

$$(३)\ \frac{१००}{९९}, \frac{१०१}{९९} = १०० - \bar{१} = ९९.$$

$$(४)\ \frac{७००}{६७८}, \frac{७\overline{२२}}{६७८} = ७०० - २२ = ६७८.$$

द्व्यङ्कपद्धति (बाइनरी) अर्थात् युग्मपद्धतिमें दोको भाजक बनानेपर भागफलकी भाज्यरूपता अभिमत है। क्रमशः भागफलके स्थानपर अन्तमें एककी समुपलब्धि होती है।।"

यथा;

भाजक	भाज्य	शेष
२)	२५ (	१
२)	१२ (	०
२)	६ (	०
२)	३ (	१
	१	

चरम भागफल एककी अभाज्यता अत एव शेषकल्पता सिद्ध है।

३, ५, ७, ९, ११, ...२३, ३५, ४७, ५९ आदि विषम भाज्यस्थलमें एककी शेषरूपता सिद्ध है।२, ४, ६, ८, १०, १२, १४, १६, १८, २०आदि सम भाज्यस्थलोंमें शून्यकी शेषरूपता सिद्ध है। अत एव दोनोंकी अनादिता सिद्ध है। शेषके मानाङ्कका निर्धारण करते समय सर्वत्र दोकी आवर्त्यरूपता सिद्ध है। एकाधिक क्रमसे उत्तरावर्तकता सिद्ध है। जैसा कि $२^{१}$, $२^{२}$, $२^{३}$, $२^{४}$, $२^{५}$ में २ की आवर्त्यरूपता और १, २, ३, ४, ५ की क्रमिक आवर्तकतामें विलोम क्रमसे ५, ४, ३, २, १ की पूर्वावर्तकता सिद्ध है। जैसा कि $२^{५}$, $२^{४}$, $२^{३}$, $२^{२}$, $२^{१}$ के अनुशीलनसे सिद्ध है। एकावर्तस्थलमें आवर्त्य दोकी मानाङ्कता मान्य है। शून्यके शेष होनेपर मानाङ्क शून्य होता है। शेष एकके स्थलोंमें क्रमशः द्विगुण मानाङ्कोंका योग मूल भाज्य होता है।।"

यथा;

प्रचलित प्रक्रम

२)	७५ (	१	$२^{०}$	१	१
२)	३७ (	१	$२^{१}$	२	२
२)	१८ (	०	$२^{२}$	४	०
२)	९ (	१	$२^{३}$	८	८
२)	४ (	०	$२^{४}$	१६	०
२)	२ (	०	$२^{५}$	३२	०
	१		$२^{६}$	६४	६४
					७५

वैदिक प्रक्रम

२) ७५ (१		१	१
२) ३७ (१	$२^{१}$	२	२
२) १८ (०	$२^{२}$	४	०
२) ९ (१	$२^{३}$	८	८
२) ४ (०	$२^{४}$	१६	०
२) २ (०	$२^{५}$	३२	०
२) २ (०	$२^{५}$	३२	०
१	$२^{६}$	६४	६४
			७५

आवर्त्तप्रक्रममें ग्राह्यमानाङ्कोंकी योगफलता मूलभाज्यता है।।

भाजक	२				
भाज्य, भागफल	१९	९	४	२	१
शेष	१	१	०	०	१
मानाङ्क	१	२	४	८	१६
ग्राह्यमानाङ्क	१	२	०	०	१६

अतः १ + २ +०+०+१६=१९.

भाज्यप्रक्रममें प्रथम चरणमें भाज्यकी भाजकता सिद्ध है। अभिप्राय

यह है कि सामान्य अथवा द्व्यङ्कपद्धतिरूप विशेष भागस्थलमें भाजकसे न्यून भाज्य असिद्ध है; अतः भाजक स्वयं ही प्रथम भाज्य होता है ।

अत एव उभयपक्षमें एककी भागफलता तथा शून्यकी शेषरूपता सिद्ध है।। यथा;

भाजक	भाज्य	शेष
२)	२	(१
	२	
	०	

भाजक	भाज्य	शेष
१३)	१३	(१
	१३	
	००	

(१३ × १) + ० = १३.

भागफलसे गुणित शेषयोजित भाजककी भाज्यरूपता चरितार्थ है।

भाजक	भाज्य	शेष
१५)	१६	(१
	१५	
	०१	

(१५ × १) + १ = १६.

भाज्यमें भाजककी अनुगतिके अनुरूप भागप्रक्रमता अर्थात् चरणता मान्य है। उसके अग्रिम चरणमें शेषात्मक भागफलकी समुपलब्धि होती है।

ध्यान रहे, आवर्त्यरूप भाजक या भाजकोंका गुणनफल क्रम प्राप्त शेषात्मक भागफलका मानाङ्क होता है। पूर्ववर्ती शेषोंके मानाङ्कोंके सहित शेषात्मक भागफलके मानाङ्कका योग मूल भाज्याङ्क होता है। यथा;

२४ = (२ × २ × २ × २) + ८

२	२४	०	१	०
२	१२	०	२	०
२	६	०	४	०
२	३	१	८	८
	१		१६	१६
				—
				२४

चरण ५

३२ = (२ × २ × २ × २ × २)

२	३२	०	१	०
२	१६	०	२	०
२	८	०	४	०
२	४	०	८	०
२	२	०	१६	०

१	३२	३२
		═══
		३२

चरण ६

३५ = (२ × २ × २ × २ × २) + ३

२	३५	१	१	१
२	१७	१	२	२
२	८	०	४	०
२	४	०	८	०
२	२	०	१६	०
	१		३२	३२
				═══
				३५

चरण ६

चरणनिर्धारण

चरण	मानाङ्क	पर्यन्त
१	१	केवल १
२	२	२ से ३ पर्यन्त
३	४	४ से ७ पर्यन्त
४	८	८ से १५ पर्यन्त

		१६से	३१	पर्यन्त
५	१६	३२ से	६३	पर्यन्त
६	३२	६४ से	१२७	पर्यन्त
७	६४	१२८ से	२५५	पर्यन्त
८	१२८	२५६ से	५११	पर्यन्त
९	२५६	५१२ से	१०२३	पर्यन्त
१०	५१२			
११	१०२४			

तुल्यविधाका अनुगमन अग्रिम चरणोंमें भी कर्त्तव्य हैं।

विषयानुक्रमणी

क्रम	विषय	पृष्ठ
❖	प्रकाशनप्रशस्ति	२
❖	प्राक्कथन	३
❖	दिग्दर्शन	८
❖	भूमिका	९
❖	विषयानुक्रमणी	३१
❖	मङ्गलाचरणम्	३३

१.अङ्कान्मायाध्याय:	३७
२.परिभाषाध्याय:	१०३
३.अङ्कधराध्याय:	१२४
४.द्व्यङ्काध्याय:	१८०

❖ मूलमात्रम् २२३- २३६
❁ १.आम्नायाध्यायः २२३
❁ २.परिभाषाध्यायः २२८
❁ ३.अङ्कधराध्यायः २३०
❁ ४.द्व्यङ्काध्यायः २३४

❖ प्रार्थना २३७
❖ स्वस्तिप्रकाशन २३८- २४२

गणितसूत्रम्

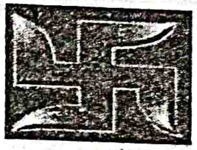

मङ्गलाचरणम्

श्रियं सरस्वतीं गौरीं गणेशं स्कन्दमीश्वरम्।
ब्रह्माणं वह्निमिन्द्रादीन् वासुदेवं नमाम्यहम्।।
(अग्निपुराण १.१)

"लक्ष्मी, सरस्वती, गौरी, गणेश, कार्तिकेय, शिव, ब्रह्मा एवम् इन्द्रादि देवोंको तथा वासुदेवको नमस्कार करता हूँ।।

गणेशं प्रमथाधीशं निर्गुणं सगुणं विभुम्।
योगिनो यत्पदं यान्ति तं गौरीनन्दनं भजे।।
(गणेशपूर्वतापिन्युपनिषत्)

"जो प्रमथ – संज्ञक शिवगणोंके अधिपति तथा निर्गुण और सगुण हैं, योगिवृन्द जिस पदको प्राप्त करते हैं, उस गौरीनन्दन गणेशका मैं आत्मीय एवम् आत्मभावसे भजन करता हूँ।।"

सुरगणपितृयक्षसेवितं ह्यसुरनिशाचरसिद्धवन्दितम्।
वरकनकहुताशनप्रभं प्रणपतितोऽस्मि हिताय भास्करम्।।

(महाभारत - वनपर्व ३.२९)

"समस्त देवता, पितर, यक्ष जिनकी सेवा करते हैं; असुर, निशा तथा सिद्ध जिनकी वन्दना करते हैं तथा जो उत्तम सुवर्ण और अग्नि समान कान्तिमान् हैं, उन हितस्वरूप भगवान् भास्करको मैं सर्वहित भावनासे प्रणाम करता हूँ।।"

चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा
द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति
महो देवो मर्त्याँ आ विवेश।।

(ऋक् - संहिता ४. ५८. ३)

"गणितके अधिदैव गणपतिसंज्ञक श्रीमहादेवके योग, ऋण, गुण तथा भाग - नामक चार शृङ्ग हैं। इसके '१, ९ और १०'–नाम गतिसाधनरूप तीन पाद हैं और 'अङ्काम्नाय तथा अक्षराम्नाय संज्ञक सिर हैं। इसके १ और ९ के मध्यवर्ती '२, ३, ४, ५, ६, ७, ८' संज्ञ अर्थसाधक सात हाथ हैं। यह 'देश, काल और वस्तु' नामक तीन सङ्ख्ये (गणेय) में निबद्ध है। यह गणित अभीष्टवर्षक वृषभ है। यह उच्चारणदशा शब्दब्रह्मात्मक अक्षराम्नायरूप है। ऐसे गणेशसंज्ञक महादेवका तादात्म्यापन्नभावसे स्मरण, अभिनन्दन, अनुशीलन और अनुगमन करत हूँ।।"

श्रीशङ्कराचार्यपदाधिरूढ -
श्रीभारतीकृष्णनिजाभिधानम्।

जगद्गुरूणां चरणारविन्दं
समर्चयामीप्सितसर्वसिद्ध्यै।।७।।

(श्रीभारतीकृष्ण - प्रशस्ति)

"मैं सर्व अभीष्टोंकी सिद्धिके लिए श्रीशङ्कराचार्यपदपर विधिवत् अभिषिक्त और प्रतिष्ठित नामानुरूप कर्मवाले वैदिक गणितके रचयिता श्रीमज्जगद्गुरु श्रीभारतीकृष्णतीर्थजीके चरणारविन्दकी समर्चा करता हूँ।।"

ॐ

"नारायणाखिलगुरो भगवन् नमस्ते"
(श्रीमद्भागवत ८. ३. ३२)
"नमो वरदाय विघ्नहर्त्रे"
(गणेशपूर्वतापिन्युपनिषत्)

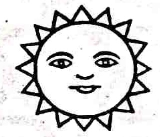

श्रीहरिः

श्रीगणेशाय नमः

नमोऽस्तु रामाय सलक्ष्मणाय
देव्यै च तस्यै जनकात्मजायै।
नमोऽस्तु रुद्रेन्द्रयमानलेभ्यो
नमोऽस्तु चन्द्रार्कमरुद्गणेभ्यः ।।

"लक्ष्मणसहित श्रीरामके लिए नमस्कार हो! श्रीरामकी उस ह्लादि शक्तिस्वरूपा जगज्जननी जनकनन्दिनी देवी सीताके लिए नमस्कार हो रुद्र, इन्द्र, यम और अग्निके लिए नमस्कार हो! चन्द्र, सूर्य तथा वायुप्र मरुद्गणके लिए नमस्कार हो!"

१.आम्नायाध्यायः

१. अथातोऽङ्काम्नायानुशासनम् ।।

(गणितसूत्रम् १.१)

ओङ्कारश्चाथशब्दश्च द्वावेतौ ब्रह्मणः पुरा ।
कण्ठं भित्त्वा विनिर्यातौ तस्मान्माङ्गलिकावुभौ ।।

(नारदपुराणपूर्वभाग ५१. १०)

''मङ्गलवाचक 'अथ' है; अतः उसका उच्चारण करनेके अनन्तर अङ्काम्नायका उपदेशानुशीलन किया जाता है। अङ्काम्नायका अक्षराम्नायके अधीन उच्चारण होनेके कारण अक्षराम्नायानुशीलनके अनन्तर अङ्काम्नायका अनुशीलन कर्त्तव्य है।।"

जीवोंके अभ्युदय और निःश्रेयसिद्धिके अभिप्रायसे जगत् की संरचना अङ्काम्नायगत शून्यतुल्य ब्रह्म और एककल्प मायाशक्तिके संयोगसे दशमलवपद्धतिके सर्वथा अनुरूप हुई है। अत एव अङ्काम्नायका दार्शनिक, वैज्ञानिक एवम् व्यावहारिक धरातलपर महत्त्व ख्यापित करनेकी भावनासे अक्षराम्नायानुशीलनके अनन्तर अङ्काम्नायका उपदेश और अनुशीलन कर्त्तव्य है।

२.एकनवशून्यसमवायस्योङ्काररूपता।।

''एक, नौ तथा शून्योंके समवेतस्वरूपकी अङ्काम्नाय[illegible] ओङ्काररूपता सिद्ध है।''

वैदिक प्रस्थानमें 'ओम्' को वेदोंका बीज माना गया है। ओङ्का[illegible] समग्र अक्षराम्नाय सन्निहित है । 'अ,उ,म्'– ये प्रणवसंज्ञक ओङ्कारके [illegible] विभाग हैं । 'अ' वर्णाम्नायगत प्रथमाक्षर है । 'उ' मध्यमाक्षर है । '[illegible] स्पर्शवर्णका अन्तिमाक्षर है । तद्वत् अङ्काम्नायमें १, ९ और ० को बीजा[illegible] मानना आवश्यक है । १ प्रथमाङ्क है । ९ मध्यमाङ्क है । ० अन्तिमाङ्क [illegible] १+९= १० में संलग्नता सिद्धान्तकी दृष्टिसे ९ का पर्यवसान ० परिलक्षि[illegible] है । १० +१=११ में ० का पर्यवसान १ है । १+१=२, २ + १=[illegible] ३ +१= ४, ४ +१= ५, ५ +१= ६, ६+१=७, ७ +१= ८, ८ +[illegible] ९ की दृष्टिसे १ का पर्यवसान ९ है ।

उक्त रीतिसे १,९ और ० का चक्रावर्त अङ्काम्नायमें १[illegible] ओङ्कार है ।

३. गणेयस्य गणना गणितम्।।

"देश, काल और वस्तुकी तथा इनसे अतीत परम भावस्व[illegible] ब्रह्मकी एवम् इनसे सम्बद्ध अभावकी गणेयसंज्ञा है। गणेयकी गण[illegible] गणित है।"

उत्पन्न वस्तु देश तथा कालकी सीमामें सन्निहित होती है। दे[illegible] तथा कालकी कलनाका मूल सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्म भी वेदान्त प्रस्थान[illegible] एक शब्दसे निरूपित होता है। वह परमभावरूप वास्तव वस्तु मान्य [illegible] न्यायनयानुसार अत्यन्ताभावका निरूपण देशसापेक्ष , प्रागभाव अ[illegible]

प्रध्वंसाभावका प्रतिपादन कालसापेक्ष और अन्योन्याभावका विवेचन वस्तुसापेक्ष है। उक्त रीतिसे भाव तथा अभाव आकलनका विषय है।

२ – १ = १, १ – १ = ०. ० – ० = ० के अनुशीलनसे यह तथ्य सिद्ध है कि अवरोहक्रमसे दोका पूर्वाङ्क एक तथा एकका पूर्वाङ्क शून्य है, परन्तु शून्यका पूर्वाङ्क शून्य ही है, न कि कोई अन्य। अत एव शून्य कालकवलित न होनेवाला प्रथमाङ्क है। तथापि निर्विशेषताकी अवधि होनेके कारण गणेय **(गणन या अङ्कन – योग्य)** नहीं है। गणेय प्रथमाङ्क १ है। तदनन्तर क्रमिक गणेयाङ्क २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९ हैं। १०, ११, १२, १३, १४, १५, १६, १७, १८, १९ आदि युग्माङ्क हैं। आरोहक्रमसे युग्माङ्ककी गति असङ्ख्य – पर्यन्त है। यह तथ्य ० + १ = १, १ + १ = २, २ + १ = ३, ३ + १ = ४, ४ + १ = ५, ५ + १ = ६, ६ + १ = ७, ७ + १ = ८, ८ + १ = ९, ९ + १ = १०, १० + १ = ११ , ११ + १ = १२ , १२ + १ = १३ , १३+ १ = १४ , १४ + १ = १५ , १५ + १ = १६ , १६ + १ = १७ , १७ + १ = १८ , १८ + १= १९ आदिके अनुशीलनसे सिद्ध है।

४.अ ण्।। इ क्।।उ ङ्।। ऋ च्।। लृ ट्।। ए म्।। ऐ ञ्।। ओ श्।। औ ष्।। श स्।। अ श स्।। एकादिक्रमेण दश।।

"प्रत्याह्रियन्ते संक्षिप्यन्ते निर्दिश्यन्ते अङ्का यत्र स प्रत्याहारः" – जिससे अङ्कोंका संक्षेप और सङ्केत सुलभ हो, उसे प्रत्याहार कहते हैं।

"आदिरन्त्येन सहेता" (१.१.७१) – इस महर्षि पाणिनिविरचित सूत्रके अनुसार प्रत्याहारमें अन्तिम वर्ण इत्संज्ञक है। तद्वत् "अ ण् इ क् ।। उ ङ्।। ऋ च्।। लृ ट्।। ए म्।। ऐ ञ्।। ओ श्।। औ ष् शस्।। अशस्।।" प्रत्याहारमें अन्तिम वर्ण "ण्, क्, ङ्, च्, ट्, म्, ञ्, श्, ष्, स्, स्।" इत्संज्ञक है। इत्संज्ञक ण् – आदि किसी अङ्कका ग्रहण नहीं किया गया है। अण् – प्रत्याहारमें अ एकका वाचक है। शस् – प्रत्याहारमें 'श' शून्यका द्योतक है।। अ श स् प्रत्याहारमें 'अ' एकका और 'श' शून्यका ख्यापक होनेके कारण 'अश' दसका द्योतक है। प्रत्याहारक्रमसे अङ्कविमर्श इस प्रकार है। –

अ	इ	उ	ऋ	लृ	ए	ऐ	ओ	औ	म्
१	२	३	४	५	६	७	८	९	०
अश	इश	उश	ऋश	लृश	एश	ऐश	ओश	औश	
१०	२०	३०	४०	५०	६०	७०	८०	९०	

तुल्यविधाका अनुगमन अग्रिम चरणोंमें भी कर्त्तव्य है।

$अश^{१} = १०^{१} = १०.$

$अश^{२} = १०^{२} = १००.$

$अश^{३} = १०^{३} = १०००.$

$अश^{४} = १०^{४} = १००००.$

५. असति सत् प्रतिष्ठितम्, सति भूतं प्रतिष्ठितम्।।
(अथर्वसंहिता १७.१.१९)/१

"निर्विशेष ब्रह्मात्मरूप शून्यमें शक्तिस्वरूप प्रथम सविशेष एक प्रतिष्ठित है। उस सर्वबीज शक्तिस्वरूप १ में उत्तरोत्तर सविशेष २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १० आदि अन्य गणेय (गणनाके योग्य) अङ्क प्रतिष्ठित हैं। अभिप्राय यह है कि ० और १ अङ्काधार और अङ्कमूल हैं।

६. एकैकयैषा सृष्ट्या सं बभूव ।।
(अथर्वसंहिता ३.२८.१)/२

"सृष्टिसंरचनाके सदृश अङ्काम्नायकी संरचना एक – एकके द्वारा सम्पादित हुई।"

७.देशकालवस्तूनामाकलनं गणितम्।।

"देश, काल तथा वस्तुओंका आकलन गणित है।"

अभिप्राय यह है कि पूर्वादि देशप्रभेद, भूतादि कालप्रभेद, आकाशादि पञ्च भूत, शब्दादि पञ्च तन्मात्रा, श्रोत्रादि पञ्च ज्ञानेन्द्रिय, वागादि पञ्च कर्मेन्द्रिय, दिक् तथा अग्नि आदि दश अधिदैव, प्राणादि पञ्च प्राणप्रभेद, सत्त्वादि त्रिगुण, जीव – ईश्वर तथा ब्रह्म एवम् इनके असङ्ख्य भेद – वस्तुप्रभेद मान्य हैं। देश तथा कालकी अपेक्षा वस्तुकी सङ्ख्या अत्यधिक है ; अतः वस्तुपरिगणनकी प्रधानतासे ही गणितकी प्रसिद्धि है।

जो कुछ विधिमुख या निषेधमुखसे वर्णनका विषय है, उसमें

वर्णमालाकी गति है। तद्वत् जो कुछ गणनाका विषय है, उसमें अङ्कमाला
गति है।

जाति, गुण, क्रिया, सम्बद्ध, रूढि को लेकर देव, श्वेत, यज्ञ
निज, डित्थ (छिन्न वृक्षका मूल भाग, काष्ठमय हस्ती, सर्वशास्त्रवे
प्रियदर्शन श्यामरूप युवा), डवित्थ (वल्मीककीटसमुद्भूत बृहन्मृत्तिप
काष्ठमय मृग) आदि शब्दोंकी प्रवृत्ति होती है और जात्यादिसे विलक्षण
लेकर एक, अगुण, अक्रिय, असङ्ग, ब्रह्म, आत्मा आदि शब्दोंकी प्रवृ
होती है।

देश, काल, वस्तुसे अपरिच्छिन्न अनन्त – संज्ञक सर्वकार
सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्म **"एक"** कहा जाता है– **"सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म"**
(तैत्तिरीयोपनिषत् २.१), **"सत्यं ज्ञानमनन्तमानन्दं ब्रह्म"** (सर्वसारोपनिष
३), **"एकमेवाद्वितीयम्"** (छान्दोग्योपनिषत् ६.२.१)।

किसी भी वस्तुकी समुत्पत्ति किसी देश तथा कालमें होती है
देशगणना, कालगणना तथा वस्तुगणनामें सङ्ख्याकी उपयोगिता सुनिश्चि
है। अतः गणितकी उपयोगिता अकुण्ठित है।

गणितजगत् में व्याप्त दशमलवपद्धति वेदोंकी अद्भुत देन है
वैदिक वाङ्मयमें देश, काल, वस्तु – गणनामें दश – प्रभेदका अद्भु
महत्त्व है। प्राची, आग्नेयी, दक्षिण, नैर्ऋति, प्रतीची, वायवी, उदीची
ईशानी, ऊर्ध्व, अधः – संज्ञक दिशाके दश प्रभेद हैं।

कालसे सम्बद्ध लट् (वर्तमान Present tense), लोट् (आज्ञार्थ
Imperative mood), लङ् (अनद्यतन भूत Past imperfect
tense), लिङ् (आशीः Benedictive, विधि Potential mood),
लिट् (परोक्ष भूत Past perfect tense), लुट् (अनद्यतनभविष्य First
Future), लृट् (सामान्यभविष्य Simple Future), लुङ् (सामान्य

भूत Aorist), लृङ् (क्रियातिपत्ति Conditional), लेट् (वेदोंमें प्रयुक्त) –संज्ञक दश लकार (विभक्ति) हैं।–

"लट् वर्तमाने लेट् वेदे भूते लुङ् लङ् लिटस्तथा।
विध्याशिषोस्तु लिङ्लोटौ लुट् लृट् लृङ् च भविष्यतः॥"

भ्वादि, अदादि, जुहोत्यादि, दिवादि, स्वादि, तुदादि, रुधादि, तनादि, क्र्यादि तथा चुरादि दश गण होते हैं। –

**"भ्वाद्यदादी जुहोत्यादिर्दिवादिः स्वादिरेव च।
तुदादिश्च रुध्यादिश्च तनक्र्यादिश्चुरादयः॥"**

अवतारी भगवान् विष्णुके चर्चित अवतार भी दश होते हैं। –

**"मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नरसिंहश्च वामनः।
रामो रामश्च रामश्च कृष्णः कल्की च ते दश॥"**

(महाभारत – शान्तिपर्व ३३९.७६दाक्षि.)

"मत्स्य, कूर्म, वराह, नरसिंह, वामन, परशुराम, श्रीराम, बलराम, श्रीकृष्ण तथा कल्कि – ये दस अवतार हैं॥"

श्रीबलरामजीके स्थानपर श्रीकृष्णावतारके पश्चात् बुद्धावतारका अथवा श्रीकृष्णको अवतारी मानकर बलरामसहित श्रीबौद्धावतारका भी शास्त्रोंमें समुल्लेख है।–

**"वनजौ वनजौ खर्वः त्रिरामी सकृपोऽकृपः।
अवतारा दशैवैते कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्॥"**

"वनज – जलचर मत्स्य तथा कूर्म, वनज – वनचर वराह और नृसिंह, खर्व – वामन, त्रिरामी – परशुराम, राम, बलराम, सकृपः – बुद्ध, अकृपः – कल्कि ये ही दशावतार हैं, श्रीकृष्ण तो साक्षात् अवतारी ही हैं॥"

१०, १००, १००० आदि सङ्ख्याक्रममें अट्ठारहवें स्थान[illegible]
सन्निहित परार्द्धपर्यन्त उत्तरोत्तर दशगुण वृद्धि है।–

"स्थानात्स्थानं दशगुणमेकस्माद्गुण्यते द्विज ।
ततोऽष्टादशमे भागे परार्द्धमभिधीयते ।।"
(विष्णुपुराण ६.४.४)

पृथिवीसे जल – तेज–वायु–आकाश–अहम्–मह[illegible]
तथा अव्यक्तरूप सप्तावरणमें उत्तरोत्तर दशगुणताकी मान्यता है ।–

"दशोत्तराधिकैर्यत्र प्रविष्टः परमाणुवत्।"
(श्रीमद्भागवत ३.११.४०)।

पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश – संज्ञक पञ्च स्थूलभूत एव[illegible] गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द–तन्मात्र संज्ञक पञ्च सूक्ष्मभूतकी दृष्टि[illegible] दसभूत सिद्ध होते हैं । वाक्, पाणि, पाद, पायु और उपस्थ – नामक प[illegible] कर्मेन्द्रियाँ हैं । श्रोत्र, त्वक्, नेत्र, जिह्वा और नासिका–नामक पञ्च ज्ञानेन्द्रि[illegible] हैं । अग्नि, इन्द्र, उपेन्द्र, प्रजापति, मृत्यु – नामक पञ्च कर्मेन्द्रियोंके अधिदै[illegible] हैं। दिक्, वायु, सूर्य, वरुण तथा अश्विनी (नासत्य, दस्र) – नामक प[illegible] ज्ञानेन्द्रियोंके अधिदैव हैं। इस प्रकार दस इन्द्रियाँ हैं । प्राण, अपान, व्यान[illegible] उदान, समान – संज्ञक पञ्च प्राण हैं । नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त त[illegible] धनञ्जय – संज्ञक पञ्च उपप्राण हैं । इस प्रकार दशविध प्राण हैं । इड[illegible] पिङ्गला, सुषुम्णा, गान्धारी, हस्तिजिह्वा, पूषा, यशस्विनी, अलम्बुसा, कुह[illegible] शङ्खिनी नामक दस प्राणवाहिनी नाडियाँ हैं । मन, बुद्धि, चित्त, अहम् औ[illegible] अनुसन्धानात्मक अन्तःकरण अन्तःकरणके पाँच विभाग हैं । प्रमाण[illegible] विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति – अन्तःकरणकी पाँच वृत्तियाँ हैं । इ[illegible] प्रकार वृत्तियोंके सहित अन्तःकरणके दश प्रभेद हैं । चिणि, चिञ्चिणि[illegible] घण्टा, शङ्ख, तन्त्री, ताल, वेणु, मृदङ्ग, भेरी तथा मेघ – नामक दश ना[illegible]

हैं । यह तथ्य 'हंसोपनिषत्' के अनुशीलनसे सिद्ध है ।–

''हंसवशान्नादो दशविधो जायते ।''
(हंसोपनिषत्)

उक्त रीति से वस्तुप्रभेदकी दृष्टिसे भी दशमलवपद्धतिका वैदिक वाङ्मयमें अद्भुत महत्त्व है ।

हाथोंमें दस उँगलियाँ और पाँवोंमें दस उँगलियाँ हैं । श्रीमद्भागवत २.१०.१–७ के अनुसार महापुराणोंमें सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण, ऊति, मन्वन्तर, ईशानुकथा, निरोध, मुक्ति और आश्रयरूप पुराणोंके दश लक्षण माने गये हैं।

उक्त रीतिसे विचार करनेपर सर्वेश्वरने सृष्टिसंरचनामें दशमलव–पद्धतिका सर्वत्र उपयोग और प्रयोग किया है । यह सृष्टि दशमलव – पद्धतिकी प्रशस्त व्याख्या है ।

"दशमस्त्वमसि" – "दसवाँ तू है" की दर्शनोक्तिके अनुशीलनसे वैदिक और वेदानुकूल लौकिक प्रस्थानमें दशमलवपद्धतिका उत्कर्ष सिद्ध होता है।

८.अक्षराम्नायवदङ्काम्नायेऽपि दशमलव– सिद्धिः।।

"अक्षराम्नायके तुल्य अङ्काम्नायमें भी दशमलवपद्धतिकी सिद्धि है।"

"अ इ उ ण्, ऋ लृ क्, ए ओ ङ्, ऐ औ च्" के अनुशीलनसे सिद्ध है कि अक्षराम्नायगत दशमलवपद्धतिके अनुस्वार "अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए , ऐ, ओ, औ, अं" में औ नौमें स्थान पर स्थित है और उसके बाद दसवें स्थानपर "अ"के साथ " ं " (अनुस्वार) सन्निहित है, तद्वत् अङ्काम्नायगत दशमलवपद्धतिके अनुसार १, २ , ३, ४, ५, ६, ७, ८,

९, १० में दशवें स्थानपर १ के साथ ० (शून्य) सन्निहित है।

अक्षराम्नाय और अङ्काम्नायके साम्यकी दृष्टिसे समीकरण स्वरूप इस प्रकार है। –

"अकारो वै सर्वा वाक् "

(तैत्तिरीयारण्यक २.३.६, ऐतरेय ३.६.७)

अ = १, आ = २, ई = ३

ऊ = ४, ऋ = ५, ए = ६

ऐं = ७, ओ = ८, औ = ९

अं = १०.

अं में असंलग्न अ = ·

१० में असंलग्न १ = ०

(-) आ – अ = अ, अ – अ = ·

∴ · + अ = अ, अ + अ = आ

(-) २ – १ = १, १ – १ = ०

∴ ० + १ = १, १ + १ = २.

उक्त समीकरणके अनुसार अनुस्वार निर्विशेष होनेसे अक्षरों मूल है। उसकी अभिव्यक्ति प्रथमाक्षर अकारके सहित दसवें स्थानपर है। तद्वत् शून्य निर्विशेष होनेसे अङ्कोंका मूल है। उसकी अभिव्यक्ति प्रथमाङ्क एकके सहित दसवें स्थानपर होती है।

तन्त्रशास्त्रों में अङ्गन्यासादिके सन्दर्भमें अकारादि और ककारादि अनुस्वारयुक्त प्रयुक्त होते हैं । इस तथ्यके अनुशीलनसे अनुस्वार सर्वानुगत वर्ण माननेका मार्ग प्रशस्त होता है ।

भगवत्पाद श्रीशङ्कराचार्यविरचित '**प्रपञ्चसार**' (तृतीयपटल ४ ७) के अनुसार अ, इ, उ, और विन्दु '· ' पुल्लिङ्ग मान्य हैं । अतः केवल

बिन्दुकी स्वतन्त्र स्वरसंज्ञा चरितार्थ है ।

बिन्दुसंज्ञक अनुस्वारसे अकारादि अक्षरोंका मूल पश्यन्ती नामक नादकी उत्पत्ति मान्य है ।–

मूलाधारगता शक्तिः स्वाधारा बिन्दुरूपिणी ।
तस्यामुत्पद्यते नादः सूक्ष्मबीजादिवाङ्कुरः ।
तां पश्यन्तीं विदुर्विश्वं यया पश्यन्ति योगिनः ।।

(योगशिखोपनिषत् ३.२,३)

प्रणवगत अर्द्धमात्राकी परम सदाशिवरूपताकी दृष्टिसे भी अनुस्वार वेदबीज ओङ्कारकी वीजावस्था सिद्ध है ।–

''अर्द्धमात्रा च या मूर्ध्नि परमः स सदाशिवः ।''

(स्कन्दपुराण मा.कुमा. ३.२५२)

दार्शनिकधरातलपर ब्रह्म, माया (प्रकृति), फूले हुए बीजके तुल्य उच्छूनावस्थापन्न अव्यक्त, महत् , अहम् , आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी तथा पार्थिव प्रपञ्चके तुल्य अङ्काम्नायमें ०, १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९ तथा १० हैं । अभिप्राय यह है कि ब्रह्मसदृश ०, मायासदृश १, अव्यक्तसदृश २, महत्तुल्य ३, अहंके सदृश ४, आकाशसदृश ५, वायुतुल्य ६, तेजस्तुल्य ७, जलसदृश ८, पृथ्वीसदृश ९ तथा पार्थिव प्रपञ्चसदृश १० मान्य है। महत्तासम्पन्न महत् का गुण ममता है। अहम् का गुण अहन्ता है। आकाशका गुण शब्द है। वायुका गुण स्पर्श है । तेजका गुण रूप है। जलका गुण रस है। पृथ्वीका गुण गन्ध है। कारणके गुणकी कार्यमें अनुगतिके अनुसार आकाशादि पञ्च भूत ममतास्पद तथा अहन्तास्पद हैं। आकाशका गुण शब्द है। वायुके गुण शब्द तथा स्पर्श हैं। तेजके गुण शब्द , स्पर्श तथा रूप हैं। जलके गुण शब्द ,स्पर्श, रूप तथा रस हैं । पृथ्वीके गुण शब्द ,स्पर्श, रूप, रस और गन्ध हैं। पार्थिव प्रपञ्चमें शब्द,

स्पर्श, रूप, रस और गन्धके अतिरिक्त गुणका अदर्शन लोकानुभवसिद्ध है। अत: तात्त्विक परिणाम पृथ्वी – पर्यन्त मान्य है। पार्थिव प्रपञ्चमें अतिरि... गुणकी असिद्धि और अर्थक्रियाकारितामें वृद्धि ही सिद्ध है। पार्थिव प्रपञ्च... अतिरिक्त विशेषताका अदर्शनरूप निर्विशेषता ब्रह्मानुगति है एवम् अतिरि... विशेषतामें वृद्धि मायाकी अनुगति है। तद्वत् १० शून्य तथा एकका समाह... है। १० में नौकी अपेक्षा सङ्ख्यामें वृद्धि होने पर भी २१, ३२, ४३, ५... ६५, ७६, ८७, ९८, १०९, २१० के तुल्य अङ्काकृतिमें विशेषता नहीं है... अभिप्राय यह हैं कि दशादिमें इकाई आदि स्थानापन्न ०, १, २, ३, ... ५, ६, ७, ८, ९ ही अङ्कित होता है।

❁

९.शून्यस्य प्रथमाङ्कता।।

“ शून्यकी प्रथमाङ्कता है। अभिप्राय यह है कि शून्य प्रथमाङ्क है ।”

० से भी किसी अङ्कको न्यून माननेपर

१. उत्तराङ्ककी अपेक्षा पूर्वाङ्क सविशेष भावाङ्क होता है। अत... शून्यको भावाङ्क माननेकी विवशता होगी, जो कि आधुनिक गणितज्ञों... अमान्य है।

२. अङ्कमूलकी सिद्धि असम्भव होगी। कारण यह है कि १, २, ३, ४.....की तरह – १, –२, –३, –४....का प्रवाह असङ्ख्यपर्यन्त प्रा... होगा। तथापि समुद्रके स्तरसे नीचे या ऊपरके समान ० से न्यून या अधि... कहनेकी अनिवार्यता होगी। अभिप्राय यह है कि अङ्कोंका उत्कर्षापक... शून्यसापेक्ष ही मान्य होगा।

वस्तुत: २ – १ = १, ३ – १ = २ आदि स्थलोंमें न्यूनता... द्योतक १ तथा २ आदि ऋणचिह्नित नहीं होते। तद्वत् ३ + २ = ५, ३ + २ = ६ आदि स्थलोंमें अधिकताके द्योतक ५ तथा ६ आदि भी ऋणचिह्नित नहीं होते।

वस्तुत: २ – ३ = –१का अभिप्राय ‘३ से दो एक अङ्क न्यून’ है, १ – २ = –१ का अभिप्राय ‘२ से एक एक अङ्क न्यून’ है; तद्वत् ० – १ = –१ का अभिप्राय ‘१ से ० एक अङ्क न्यून है ’ ही सिद्ध है।

३. १, २, ३ आदिके अतिरिक्त ऋणचिह्नित अङ्ककी भी स्वतन्त्र अङ्करूपमें मान्यता होगी।

४. “मूलं शून्यं विजानीयात् । शून्यं वै परं ब्रह्म ।” (गणेशपूर्वतापिन्युपनिषत् ३.१), “अशून्यं शून्यभावं तु” (तेजोबिन्दूपनिषत् १.१०)– “शून्यभाव वस्तुत: सर्व मूल परब्रह्मस्वरूप भावात्मक है, वह अभावात्मक नहीं है।” आदि श्रौतसिद्धान्त बाधित होगा। जिसके फलस्वरूप अङ्काम्नाय दिशाहीन व्यापारतन्त्रमात्र सिद्ध होगा ।

५. गणितज्ञोंका आकलन त्रुटिग्रस्त होगा, जिसके फलस्वरूप सम्बन्धित विज्ञान तथा कार्यक्षेत्र विध्वंसक सिद्ध होगा।

६. ० – १ = –१ को सैद्धान्तिक माननेपर **“शिष्यते शेषसंज्ञ:”** (श्रीमद्भागवत १०.३.२५, वैदिक गणित)के अनुसार ‘अवशिष्ट भावरूपताकी शेषसंज्ञा है’ – इस वैदिकी परिभाषाका तिरस्कार होगा। जिसके फलस्वरूप गणित युक्तिविहीन उन्मत्तोंका अनर्गल प्रलापमात्र सिद्ध होगा।

७. इकाईसे दहाई, दहाईसे सैकड़ा, सैकड़ासे हजार आदि उत्तरवर्ती अङ्कोंका उत्तरोत्तर मान अधिक मान्य हैं। १०, १०२, १०२३ आदि या १०, १००, १००० आदि स्थलोंमें शून्य इकाई, दहाई, सैकड़ा आदि क्रमसे सन्निहित है; अत: शून्यकी एकादिकी अपेक्षा न्यूनता तथा एकादिकी शून्यकी अपेक्षा अधिकता सिद्ध है। अभिप्राय यह है कि गणनाप्रक्रममें

इकाई, दहाई, सैकड़ा, हजार आदि स्थलोंमें प्रयुक्त शून्यका उत्तरवर्ती अ… एकादि होता है। वह ऋणाङ्कघटित नहीं होता और शून्यकी अपेक्षा अधि… ही होता है; न कि शून्यसे न्यून। यथा १० में इकाई-स्थानापन्न ० त… दहाई-स्थानापन्न १ ऋणचिह्नित नहीं है और ०की अपेक्षा अधिक है। त… २००में इकाई तथा दहाई-स्थानापन्न ० तथा सैकड़ा-स्थानापन्न २ ऋणचि… नहीं है और ० की अपेक्षा अधिक है।

८. ३ - १ = २, २ - १ = १, १ - १ = ०… अनुशीलनसे शून्यकी प्रथमाङ्कता तथा एकसे एक अङ्क न्यूनता चरितार्थ…

९. ९ - ९ = ०, ८ - ८ = ०, ७ - ७ = ०, ६ - … = ०, ५ - ५ = ०, ४ - ४ = ०, ३ - ३ = ०, २ - २ = … १ - १ = ० के अनुशीलनसे यह तथ्य सिद्ध है कि शून्य एकादि कि… भी अङ्कसे उतने ही अङ्क पूर्व है। समानवाचोयुक्तिसे ० - ० = ०का अ… यह है कि शून्यके पूर्व शून्य ही है, अर्थात् शून्यके पूर्व कोई अन्य अङ्क न… है। वस्तुस्थिति यह है कि किसी भी सङ्ख्याके उतनी ही पूर्व सङ्ख्याका न… शून्य है एवम् शून्यसे उतनी ही उत्तर सङ्ख्याका नाम एकादि है।

१०. (- ३) - (- ३) = - ६, (- २) - (- २) = - ४, (- १) - (- १) = - २ के अनुशीलनसे यह तथ्य सि… है कि वस्तुतः ऋणाङ्कघटित अङ्कका शून्य पूर्ववर्ती अङ्क नहीं है। अतः … - १ = - १ के अनुशीलनसे यह तथ्य सिद्ध है कि १ शून्यका उत्तर… है।

११. (- ३) + ३ = ०, (- २) + २ = ०, (- १) + १ = ० के अनुशीलनसे यह तथ्य सिद्ध है कि तीन आदिसे उसी… ऋण करनेपर शेष ० रहता है।

यद्यपि गणनाकी दृष्टिसे एकको प्रथमाङ्कता मान्य है, तथापि दो अङ्कोंकी सबसे छोटी सङ्ख्या ११ अमान्य है, जब कि १० मान्य। १० में ० इकाईस्थानापन्न है और १ दहाईस्थानापन्न; जो कि एक अङ्ककी सबसे छोटी सङ्ख्या एक और एक अङ्ककी सबसे बड़ी सङ्ख्या ९ के योगसे निष्पन्न है। कदाचित् नौके पश्चात् शून्यकी स्थिति होती, तब एक अङ्ककी सबसे छोटी सङ्ख्या १ तथा एक अङ्ककी सबसे बड़ी सङ्ख्या ० के योगसे १ की ही निष्पत्ति होती है। वैसी स्थितिमें दो अङ्कोंकी सबसे छोटी सङ्ख्या १०के स्थानपर ०१ की सिद्धि होती।

१ × ९ = ९;
११ × ९ = ९९;
१११ × ९ = ९९९;

परन्तु

१ × ९ = ९;
१० × ९ = ९०;
९० + ९ = ९९;
१०० × ९ = ९००;
९०० + ९९ = ९९९

या

१ × ९ = ९;
१० × १० = १००;
१०० - १ = ९९;
१०० × १० = १०००;
१००० - १ = ९९९

उक्त रीतिसे एक अङ्ककी सबसे छोटी सङ्ख्या १ और दो अङ्कों
सबसे छोटी सङ्ख्या ११ न मानकर १० माननेकी प्रथा १० गत इका
स्थानापन्न ० को सैद्धान्तिक धरातलपर प्रथमाङ्क सिद्ध करती है ।

उक्त हेतुओंसे ० को निर्विशेषात्मक अङ्कमूल तथा १ को सविशेषात्म
अङ्कमूल माननेकी आवश्यकता है। दर्शन जगत् में सन्निकट सविशेष
कार्य तथा सन्निकट निर्विशेषकी कारण या मूल संज्ञा है। यथा शब्द त
स्पर्श - संज्ञक दो विशेषताओंसे सम्पन्न वायुकी अपेक्षा केवल शब्द
एक विशेषतासम्पन्न आकाश आपेक्षिक निर्विशेष होनेके कारण वायु
कारण अर्थात् मूल है। शब्दरहित आकाशका भी मूल अशब्द - अस्पर्श
ब्रह्म है। तद्वत् २ का मूल १ और १ का मूल ० है। उस सर्वाङ्कमूल
का कोई मूल नहीं है। एकादिमें उसकी अभिव्यञ्जकता है ।

१०.एकादिषु तस्याभिव्यञ्जकता।।

"एकादिमें उसकी अभिव्यञ्जकता है । यह तथ्य १०, २०, ३
आदिके अनुशीलनसे सिद्ध है। सूर्य तथा चन्द्रके योगसे राहुकी त
काष्ठादिके योगसे अग्निकी अभिव्यक्तता इस सन्दर्भमें युक्त दृष्टान्त है।

११. एकस्य सर्वाङ्करूपता ।।

"एककी सर्वाङ्करूपता सिद्ध है।"

एककी उत्तराङ्कमें अनुगतिके अनुशीलनसे यह तथ्य सिद्ध है
एककी दो आदि अङ्कोंमें अनुगति है। अतः एककी सर्वाङ्करूपता सिद्ध है
यथा, १ + १ = २, २ + १ = ३ आदि।

१२. समविषमाभ्याम् ।।

"०, १. २, ३. ४, ५. आदि सम तथा विषम अङ्कोंके क्रमिक सन्निवेशसे अङ्कमालाकी निष्पत्ति सम्भव है।"

०, २, ४, ६, ८, आदि समाङ्क हैं। १, ३, ५, ७, ९ आदि विषमाङ्क हैं। समाङ्कसंलग्न विषमाङ्क समाङ्कको विषमाङ्क बना देते हैं। यथा, ०१, २३, ४५, ६७, ८९ आदि। विषमाङ्कसंलग्न समाङ्क विषमाङ्कको समाङ्क बना देते हैं। यथा , १०, १२, ३४, ५६, ७८, ९० आदि। २ के योगसे समाङ्क समाङ्क होते हैं और विषमाङ्क विषमाङ्क।

१३.समाङ्काद्द्व्यधिकेन समाङ्कसिद्धिः।।

"शून्य, दो, चार आदि क्रमप्राप्त समाङ्कसे दो अधिकके द्वारा अग्रिम समाङ्ककी सिद्धि होती है। यथ,० + २ = २, २ + २ = ४, ४ + २ = ६ आदि। "

१४.विषमाङ्काद्द्व्यधिकेन विषमाङ्कसिद्धिः।।

"एक, तीन आदि क्रमप्राप्त विषमाङ्कसे दो अधिकके द्वारा अग्रिम विषमाङ्ककी सिद्धि होती है। यथा,१ + २ = ३, ३ + २ = ५, ५ + २ = ७ आदि।"

१५.स्वस्मादेकन्यूनेन योगाद् विषमाङ्क -सिद्धि।।

"स्वयंसे एक न्यूनसे युक्त होनेपर विषमाङ्ककी सिद्धि होती है। यथा, १ + ० = १, २ + १ = ३, ३ + २ = ५, ४ + ३ = ७, ५ + ४ =९ आदि।"

१६. समाङ्कादेकाधिकेन विषमाङ्कसिद्धिः।।

"समाङ्कसे एक अधिकसे विषमाङ्कसिद्धि होती है। यथा, ०
१ = १, २ + १ = ३, ४ + १ = ५ आदि।"

१७. विषमाङ्कादेकाधिकेन समाङ्कसिद्धिः।।

"विषमाङ्कसे एक अधिकसे समाङ्कसिद्धि होती है। यथा, १
१ = २, ३ + १ = ४, ५ + १ = ६ आदि।"

१८. एकाधिकेनोत्तराङ्कः।।

"एक अधिकसे उत्तराङ्ककी सिद्धि होती है। यथा, ० + १
१, १ + १ = २, २ + १ = ३ आदि।"

१९. एकन्यूनेन पूर्वाङ्कः।।

"एक न्यूनसे पूर्वाङ्ककी सिद्धि होती है। यथा, ५ – १ = ४,
– १ = ३, ३ – १ = २, २ – १ = १, १ – १ = ०. आदि।"

२०. अष्टाचक्रं वर्तत एकनेमि सहस्राक्षरम्।।

(अथर्वसंहिता ११.६.२२)/ ३

"अङ्काम्नायरूप रथके निर्वाहक २ से ९ पर्यन्त अङ्क आठ च
हैं और १नेमि है, जो कि स्वयंके योगसे स्वयंको अगणितरूपोंमें व्य
करनेमें समर्थ है। उच्चारण दशामें अङ्काम्नाय अक्षराम्नायरूप परिलक्षि
होता है।"

२१. दश शाकमजयन्त।।

(अथर्वसंहिता ११.१०.५) /४

"स्रष्टाने १ से १० तकके अङ्कोंकी संरचना एक साथ सर्वप्रथम की। १ से १०, १०से २० आदि वर्गक्रमके अनुशीलनसे यह तथ्य सिद्ध है।।"

यही कारण है कि 'एकः, द्विः, त्रिः, चतुर्, पञ्चन्, षष्, सप्तन्, अष्टन्, नवन्, दशन्' की 'एकादशन्, द्वादशन्, त्रयोदशन्' – आदिमें अनुवृत्ति है। संलग्नता सिद्धान्तकी दृष्टिसे 'दशन्' (१०) में 'द' एकका तथा 'श' शून्यका द्योतक है। तद्वत् 'विंशतिः' (२०)में 'वि' दोका तथा 'श' शून्यका द्योतक है, 'त्रिंशतिः' (३०) में 'त्रि' तीनका तथा 'श' शून्यका द्योतक है, 'चत्वारिंशत्' (४०) में 'चत्वारि' चारका तथा 'श' शून्यका द्योतक है, 'पञ्चाशत्' (५०) में 'पञ्च' पाँचका तथा 'श' शून्यका द्योतक है'। 'द्विशतम्' में 'द्वि' दोका 'श' शून्यका तथा 'तम्' एकाधिक शून्यका द्योतक है, 'त्रिशतम्' में 'त्रि' तीनका 'श'शून्यका तथा 'तम्' एकाधिक शून्यका द्योतक है, 'चतुश्शतम्' में 'चतुः' चारका 'श'शून्यका तथा 'तम्' एकाधिक शून्यका द्योतक है, 'पञ्चशतम्' में 'पञ्च' पाँचका 'श' शून्यका तथा 'तम्' एकाधिक शून्यका द्योतक है।

तुल्य विधाका अनुगमन अग्रिम चरणोंमें भी कर्तव्य है।

२२. एका च मे तिस्रश्च मे पञ्च च मे सप्त च मे नव च मे ....।।/५

(वाजसनेयिमाध्यन्दिन – शुक्लयजुर्वेदसंहिता १८. २४)

उक्त होमार्थ प्रयुक्त कण्डिकाके अयुग्मस्तोम मन्त्रोंमें एक, तीन, पाँच, सात आदि क्रमसे विषम सङ्ख्याका निरूपण है। एक और तीनके मध्यमें दो, तीन और पाँचके मध्यमें चार, पाँच और सातके मध्यमें छ, सात तथा नौके मध्यमें आठ -संज्ञक सम सङ्ख्याका एकके अन्तराल अनुल्लेख है। सर्वप्रथम एकका उल्लेख गणनाकी दृष्टिसे एकको प्रथ... अङ्क सिद्ध करता है।

२३. चतस्रश्च मेऽष्टौ च मे द्वादश च मे षोडश च मे विंशतिश्च मे ....।।/६

(वाजसनेयिमाध्यन्दिन -शुक्लयजुर्वेदसंहिता १८.२५)

उक्त होमार्थ प्रयुक्त कण्डिकाके युग्मस्तोम मन्त्रोंमें चार, आठ, बारह, सोलह, अट्ठारह, बीस आदि सम सङ्ख्याका उल्लेख और मध्यवर्ती पाँच, छह, सात तथा नौ, दस, ग्यारह और तेरह, चौदह, पन्द्रह और सत्रह, अट्ठारह, उन्नीस आदि तीन - तीन सङ्ख्याका अनुल्लेख है। पूर्वोक्त रीति... एकसे सङ्ख्याका प्रारम्भ माननेपर एक और चारके मध्य दो और तीन... केवल दो अङ्कोंका व्यवधान सिद्ध होता है। ऐसी स्थितिमें स्थानकी दृष्टि... शून्यसे गणनाका प्रारम्भ अनिवार्य है।

२४. द्व्यादिक्रमेण द्विन्यूनेन क्रमाङ्कसिद्धिः।।

"दो आंदिके क्रमसे दो न्यूनसे क्रमप्राप्त अङ्ककी सिद्धि होती है। यथा, २ - २ = ०, ३ - २ = १, ४ - २ = २, ५ - २ = ३, ६ - २ = ४, ७ - २ = ५, ८ - २ = ६, ९ - २ = ७, १० - २ = ८, ११ - २ = ९, १२ - २ = १० आदि। "

२५. शून्योत्तरत्वादुत्तराङ्कसिद्धिः।।

"शून्यसे उत्तरवर्ती होनेके कारण उत्तराङ्ककी सिद्धि होती है। यथा, ० + १ = १, ० + २ = २, ० + ३ = ३ के अनुशीलनसे यह तथ्य सिद्ध है कि एक शून्यसे एक अङ्क, दो शून्यसे दो अङ्क, तीन शून्यसे तीन अङ्क उत्तरवर्ती है।"

अभिप्राय यह है कि एकादि संज्ञा शून्यसे उतने ही अङ्क उत्तरवर्तिताका द्योतक है।।

२६. स्वस्मान्न्यूनेन शून्यम् ।।

"स्वयंसे स्वयंके ऋणसे ० सिद्ध होता है अर्थात् किसी भी अङ्कसे उसीका ऋण ० होता है। यथा, २ - २ = ०, १ - १ = ० आदिके अनुशीलनसे यह तथ्य सिद्ध है कि किसी भी अङ्कसे शून्य उतने ही अङ्क पूर्व है। ० - ० = ० के अनुशीलनसे यह तथ्य सिद्ध है कि शून्यसे शून्य, शून्य अङ्क पूर्व है, अर्थात् शून्यसे पूर्व कोई भी अङ्क नहीं है, वह प्रथमाङ्क है। "

२७. दशादिगतशून्यादिक्रमानुरोधेन शून्यस्य प्रथमाङ्कता ।।

"१०, ११, १२, १३, १४, १५, १६, १७, १८, १९ तद्वत् २० से २९, ३० से ३९ आदि स्थलोंमें इकाई - स्थानापन्न क्रमशः ०, १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९ के अनुशीलनसे ० की प्रथमाङ्कता सिद्ध है।।"

२८. नवनवनवत्यादेरुत्तराङ्कानुरोधेन शून्यस्य प्रथमाङ्कता ।।

"एक अङ्ककी सबसे बड़ी सङ्ख्या ९ , दो अङ्कोंकी सबसे बड़ी सङ्ख्या ९९ , एक अङ्ककी सबसे छोटी सङ्ख्या ९+१=१० और दो अङ्कोंकी सबसे छोटी सङ्ख्या ९९+१=१०० आदिके अनुरोधसे इकाई-स्थानापन्न शून्यकी प्रथमाङ्कता सिद्ध है।"

अभिप्राय यह है कि यदि एक ही गणना तथा स्थान दोनोंकी दृष्टिसे प्रथमाङ्क सिद्ध हो, तब दो अङ्कोंकी सबसे छोटी सङ्ख्या ११ सिद्ध हो, न कि १०, तद्वत् तीन अङ्कोंकी सबसे छोटी सङ्ख्या १११ सिद्ध हो, न कि १००। परन्तु ऐसा माननेपर दशमलवपद्धतिका लोप सुनिश्चित है। यदि एक अङ्ककी सबसे छोटी सङ्ख्या ० ही मान्य हो, तब दो अङ्कोंकी सबसे छोटी सङ्ख्या ००अर्थात् शून्य ही सिद्ध हो। अतः गणनाकी दृष्टिसे १ को और स्थानकी दृष्टिसे ० को प्रथमाङ्क मानना आवश्यक है। अतएव दो अङ्कोंकी सबसे छोटी सङ्ख्या १० स्थान तथा अङ्कनका युग्मरूप है। तथापि १० में ० इकाई – स्थानापन्न होनेके कारण प्रथमाङ्क मान्य है। इकाईस्थानापन्न ० तथा दहाईस्थानापन्न १ का योग १० + ० = १० है।।

२९. शून्याद् दशादिपर्यन्तं पञ्चादेर्मध्यवर्तिता, तस्माच्छून्यस्य प्रथमाङ्कता।।

"शून्यसे दसपर्यन्त पाँचकी, तद्वत् बीसपर्यन्त दसकी, तीसपर्यन्त पन्द्रहकी, चालीसपर्यन्त बीसकी तुल्यक्रमसे अग्रिम चरणमें भी पचीस

आदिकी मध्यमें स्थिति है, अतः शून्यकी प्रथमाङ्कता सिद्ध है।"

अभिप्राय यह है कि १० ÷ २ = ५ होता है। एकसे अङ्कारम्भ माननेपर पाँचके पूर्ववर्ती ४, ३, २, १ कुल चार अङ्क और उत्तरवर्ती कुल ६, ७, ८, ९, १० संज्ञक कुल पाँच अङ्क सिद्ध होते हैं ; जब कि ०से अङ्कारम्भ माननेपर पाँचके पूर्ववर्ती ४, ३, २, १, ० और उत्तरवर्ती कुल ६, ७, ८, ९, १० संज्ञक पाँच – पाँच अङ्क सिद्ध होते हैं । उक्त सन्तुलनके कारण शून्यकी प्रथमाङ्कता सिद्ध है।।

०	१०
१	९
२	८
३	७
४	६
५	

०	२०
१	१९
२	१८
३	१७
४	१६
५	१५
६	१४
७	१३
८	१२

११

९

१०

३०. मानाङ्कविधेस्तुल्यत्वादेकादिसंलग्न शून्यवदसंलग्नस्यापि भावरूपता।।

"१०, ०१ आदि स्थलोंमें मानाङ्कविधिकी एकरूपताके का
एकादिसे संलग्न तथा असंलग्न ० की भावरूपता चरितार्थ है। १०, २
३० आदिमें क्रमश: १, २, ३ आदिसे संलग्न इकाई – स्थानापन्न ०
भावरूपताके तुल्य ०१, ०२, ०३ आदिमें क्रमश: १, २, ३ आदि
असंलग्न दहाई – स्थानापन्न ० की भी भावरूपता सिद्ध है ; कारण
है कि **१० में इकाईस्थानापन्न ० का मान** १ × ० = ० है औ
दहाईस्थानापन्न १ का मान १० × १ = १० है। दोनोंका योग ० + १
= १० है। तद्वत् ०१ में **इकाईस्थानापन्न १ का मान** १ × १ = १
और दहाईस्थानापन्न ० का मान १० × ० = ० है। दोनोंका योग १ +
० = १ है। तद्वत् १०१में **इकाईस्थानापन्न १ का मान** १ × १ =
है और दहाई – स्थानापन्न ० का मान १० × ० = ० है तथा सैकड़ा
स्थानापन्न १ का मान १०० × १ =१०० है । तीनोंका योग १+
०+१०० = १०१ है।

३१.निर्विशेषावधित्वाच्छून्यस्य भावरूपता।।

" उत्तराङ्कसे पूर्वाङ्ककी एकाङ्क न्यूनता तथा किसी भी अङ्कसे उस

अङ्कके ऋणसे शून्यशेषता और शून्यसे भी शून्यके ऋणसे शून्यशेषता शून्यको निर्विशेषावधि सिद्ध करती है। अत: निर्विशेषताकी अवधि होनेके कारण शून्यकी भावरूपता सिद्ध है। यथा, १० – १ = ९, ९ – १ = ८, ८ – १ = ७, ७ – १ = ६, ६ – १ = ५, ५ – १ = ४, ४ – १ = ३, ३ – १ = २, २ – १ = १, १ – १ = ०, ० – ० = ० ; तद्वत् १० – १० = ०, ९ – ९ = ०, ८ – ८ = ०, ७ – ७ = ०, ६ – ६ = ०, ५ – ५ = ०, ४ – ४ = ०, ३ – ३ = ०, २ – २ = ०, १ – १ = ०, ० – ० = ० के अनुशीलनसे शून्यकी सर्वाधिक निर्विशेषता सिद्ध है। अत एव नौ आदिके सदृश शून्यकी भी भावरूपता सिद्ध है।।"

३२. शून्यान्नवान्ता अङ्कमुखानि ।।

"शून्यसे नौपर्यन्त अङ्कमुख है। अभिप्राय यह है कि इकाई, दहाई आदिके क्रमसे शून्यसे नौतकके अङ्क ही संलग्न होते हैं ; अत: शून्यसे नौतकके अङ्कमें दशादि युग्माङ्कोंका अन्तर्भाव है और १०, २१, ३२ आदि सङ्ख्यामें ०,१,२,३,४,५,६,७,८,९ की अनुगति है ।"

३३.योज्ययोजकयोगेन दशादिषु विद्यमानता।।

"योज्य और योजकके योगसे दशादिमें शून्यसे नौ तकके अङ्कोंकी विद्यमानता सिद्ध है ।।"

यथा;

० + १० = १०,
१ + ९ = १०,

२ + ८ = १०,
३ + ७ = १०,
४ + ६ = १०,
५ + ५ = १०,

० + ११ = ११,
१ + १० = ११,
२ + ९ = ११,
३ + ८ = ११,
४ + ७ = ११,
५ + ६ = ११,

तुल्यविधाका अनुशीलन अग्रिम चरणोंमें भी कर्त्तव्य है।

३४. एकस्य नवयोगेन गणेयागणेयसि द्धिः।।

“एकका नौसे योग करनेपर सम्प्राप्त योगफल १० संलग्नतासिद्धान्तके अनुसार गणेय एक और अगणेय शून्यकी सिद्धि होती है।।”

१ + ९ =१०.

३५.एकादिभिः शून्यसंलग्नाद् दशादिसिद्धिः।।

“शून्यसंलग्न - एकादिसे अर्थात् एकादिके उत्तरवर्त्ती शून्य दशादिकी सिद्धि होती है।।”

यथा; १०, २०, ३० आदि।

३६.एकादिसंलग्नेनैकादिभिरेकादशा- दिसिद्धिः।।

“एकादिसे संलग्न – एकादिसे ग्यारह आदिकी सिद्धि होती है।।”

यथा; ११, २३, ३७ आदि।

सूत्र ३५ तथा ३६

०	१	२	३	४	५	६	७	८	९
१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९
२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९
३०	३१	३२	३३	३४	३५	३६	३७	३८	३९
४०	४१	४२	४३	४४	४५	४६	४७	४८	४९
५०	५१	५२	५३	५४	५५	५६	५७	५८	५९
६०	६१	६२	६३	६४	६५	६६	६७	६८	६९
७०	७१	७२	७३	७४	७५	७६	७७	७८	७९
८०	८१	८२	८३	८४	८५	७६	८७	८८	८९
९०	९१	९२	९३	९४	९५	९६	९७	९८	९९

३७. स्थानबलेन मानान्तरत्वम् ।।

“इकाई, दहाई, सैकड़ा आदि स्थानके बलसे एक ही अङ्ककी भिन्न - भिन्न सङ्ख्येयता सिद्ध है ।।”

यथा;

१०

१०गत इकाईके स्थान पर स्थित ०= १ × ० = ०

,दहाईके स्थान पर स्थित १ = १० × १ = १०

अत: ० + १० = १०.

अर्थात् संलग्नतासिद्धान्तके अनुसार १ + ९ = १०.

अर्थात् १ + (१ × ९) =१०.

२०

२०गत इकाईके स्थान पर स्थित ०= २ × ० = ०

,दहाईके स्थान पर स्थित २ = १० × २= २०

अत: ० + २०= २०.

अर्थात् संलग्नतासिद्धान्तके अनुसार २ + १८ = २०.

अर्थात् २ + (२ × ९)= २०.

९०

तद्वत् ९ + (९ × ९)=९०.

१००

पूर्ववत् १ + ९९ = १०० .

अर्थात् १ + ९० + ९= १०० .

२००

तद्वत् २०० = २ × (१ + ९० + ९).

= २ × (१००).

९००

तद्वत् ९०० = ९ × (१ + ९०+ ९).

१०००

१००० = १ × (१ + ९००+ ९० + ९).

१११

१११ = १०० + १० + १.

२२२

२२२ = २०० + २० + २.

३३३

३३३ = ३०० + ३० + ३.

४४४

४४४ = ४०० + ४० + ४.

५५५

५५५ = ५०० + ५० + ५

६६६

६६६ = ६०० + ६० + ६.

७७७

७७७ = ७०० + ७० + ७.

८८८

८८८= ८०० + ८० + ८.

९९९

९९९= ९०० + ९० + ९.

३८. प्रागेव विद्यमानत्वाद्दशादिषु प्रविष्टता।।

''शून्यसे नौतकके अङ्कोंकी पूर्वसे ही विद्यमानताके कारण दशादिमें प्रविष्टता अर्थात् अनुगतताका उपचारमात्र है।।''

	०	१	२	३	४	५	६	७	८	९
०/१	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९
२	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९

३	३०	३१	३२	३३	३४	३५	३६	३७	३८	३९
४	४०	४१	४२	४३	४४	४५	४६	४७	४८	४९
५	५०	५१	५२	५३	५४	५५	५६	५७	५८	५९
६	६०	६१	६२	६३	६४	६५	६६	६७	६८	६९
७	७०	७१	७२	७३	७४	७५	७६	७७	७८	७९
८	८०	८१	८२	८३	८४	८५	८६	८७	८८	८९
९	९०	९१	९२	९३	९४	९५	९६	९७	९८	९९

३९. एकन्यूनात् पूर्वाङ्कता।।

''एकन्यूनसे पूर्वाङ्क होता है। यथा, २ – १ = १ , १

= ० ''

४०. द्व्यादीनामेकस्मिन् समाहारः।।

''एकमें दो और तीन आदि अङ्कोंका समाहार है। लयका समाहार है। एककी एकाधिकक्रमसे असङ्ख्यकी ओर गति आरोहसं उद्भव है तथा असङ्ख्यकी ओर उन्मुखकी एक न्यूनक्रमसे एककी ओर अवरोहसंज्ञक लयात्मक समाहार है। यथा, १०– १ = ९, ९ – १ ८, ८–१= ७ , ७ –१ = ६ , ६ –१= ५ , ५ – १= ४ , ४ –१ ३, ३ –१= २ , २ – १ = १ .''

४१. तद्वदेकस्य शून्ये समाहारः।।

''समानवाचोयुक्तिसे एकका शून्यमें समाहार है। यह तथ्य १ १ = ० के अनुशीलनसे सिद्ध है। ''

४२. शून्यात् परतरं नास्ति सा काष्ठा सा परा गतिः ।।

''शून्यसे पर कोई अङ्क नहीं है, वह एकादि अङ्कोंका मूल है, वह अनन्तोन्मुख अङ्कोंकी अवधि और अन्तिम गति है। यह तथ्य ० – ० = ० के अनुशीलनसे सिद्ध है। ''

यदि ० – १ = –१, – १ – १ = –२, –२ –१ = –३ आदिको शून्यसे न्यून मानें तब ऋणचिह्नित अङ्कोंकी गति भी असङ्ख्यतक होगी। अतः गणितजगत् में मूलाङ्ककी सिद्धि असम्भव होगी। शून्यसे किसी अङ्कको अवर मानते ही शून्यको अभाव माननेकी आधुनिक गणितज्ञोंकी मान्यता निरस्त होगी। जैसे शून्यको एकसे एक न्यून माननेके कारण एककी भावरूपता चरितार्थ है, वैसे ही ऋणचिह्नित एकादिको शून्यसे अवर मानते ही शून्यकी भावरूपता सिद्ध होगी। शून्यसे पूर्ववर्ती एक न्यून –१ और उत्तरवर्ती एकाधिक १ में समुद्रतटसे अधः और ऊर्ध्वके तुल्य शून्यको मध्यवर्ती मानना होगा। तथापि ऋणचिह्नित एकादि '–१' को अङ्क मानना असङ्गत होगा। उत्तराङ्कसे एक न्यून पूर्वाङ्क ऋणचिह्नित और अधिक नहीं होता। यह तथ्य १०– १ =९, ९ – १ = ८, ८ –१= ७ , ७ –१ = ६ , ६ –१=५ , ५ –१=४ , ४ –१ = ३, ३ –१= २ , २ – १ = १ के अनुशीलनसे सिद्ध है। ३ –२ = १ कहनेपर उत्तराङ्कसे एक न्यून पूर्वाङ्कका ऋण सिद्ध होता है, जबकि शून्यसे एक न्यून कहने पर शून्यसे एकाधिक उत्तराङ्कका ऋण सिद्ध होता है। अतः शून्यसे एकाधिक उत्तराङ्कका ऋण शून्यके पूर्वाङ्कका साधक नहीं हो सकता। वस्तुतः ० – १ = –१ का अर्थ 'शून्य एकसे एक अङ्क न्यून है ' यह होता है, न कि '–१ शून्यका पूर्वाङ्क है ' यह होता है।

४३. एष सर्वेषु गूढोत्मा न प्रकाशते।।

"यह शून्य एकादि सर्व अङ्कोंमें अनुगत होनेपर भी सर्वसा… गणितज्ञोंके प्रति स्फुरित नहीं होता।"

अभिप्राय यह है कि पूर्वाङ्ककी उत्तराङ्कमें अनुगति गणित… मान्य है। यथा दोमें एकको, तीनमें दोको, चारमें तीनको। यह तथ्य १ = २, २ + १ = ३, ३ + १ = ४ के अनुशीलनसे सिद्ध… अतएव दोके तुल्य तीन और चार आदिमें भी एकको अनुगति सिद्ध है। तथ्य १ + १ = २, १ + १ + १ = ३, १ + १ + १ + १ = ४ के अनुशीलनसे सिद्ध है। पूर्वाङ्कको उत्तराङ्कमें अनुगतिरूपा युक्ति… एकके पूर्वाङ्क शून्यकी एकादिमें अनुगति भी मान्य है। परन्तु १ + १ = २, १ + १ + १ = ३, १ + १ + १ + १ = ४ के तुल्य… + ० = १, ० + ० + ० = २ का समीकरण दृष्टिगोचर नहीं है… अतः शून्यकी अनुगति उत्तरवर्ती एकादिमें परिलक्षित नहीं होती।

❋

४४. दृश्यते त्वग्रयया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः (कठोपनिषत् १.३.१२)/७

"तथापि समाहित सुसंस्कृत सूक्ष्म बुद्धिरूपा प्रज्ञाके अ… प्रभावसे दर्शनसिद्धान्तमर्मज्ञ मनीषियोंको अङ्कमूल अङ्काधार शून्य एका… अनुगत दृष्टिगोचर होता ही है।"

'पूर्वाङ्ककी उत्तराङ्कमें अनुगति' इस अकाट्य सिद्धान्तके बल… ० की एकादिमें अनुगति सम्भावित है। परन्तु एकादिकी

पूर्वाङ्कमें साक्षात् अनुगतिके तुल्य यदि शून्यकी एकादिमें अनुगति सिद्ध हो, तब शून्यकी चरम शेषसंज्ञक अव्ययरूपता असिद्ध होनेके कारण उसकी अनादि अङ्कमूलता भी असिद्ध हो। अतः एकादिमें शून्यकी अनुगतिके प्रकारका अनुशीलन अपेक्षित है। 'एकाधिकेनोत्तराङ्कः' (सूत्रगणितम् १८), 'एकन्यूनेन पूर्वाङ्कः' (सूत्रगणितम् १९) – 'एकाधिकसे पूर्वाङ्क', 'एकन्यूनसे उत्तराङ्क' की गाथा इस सन्दर्भमें क्रियान्वित हो सकती है। १ + १ = २, १ + १ + १ = ३ की शैलीमें ० + १ = १, ० + १ + १ = २ के क्रमसे शून्यकी एकादिमें अनुगति सिद्ध है। ० + १ = १, ० + २ = २, ० + ३ = ३ के अनुशीलनसे यह तथ्य सिद्ध है कि एक शून्यसे एक अङ्क, दो शून्यसे दो अङ्क, तीन शून्यसे तीन अङ्क उत्तर है। तद्वत् ३ – ३ = ०, २ – २ = ०, १ – १ = ० के अनुशीलनसे यह तथ्य सिद्ध है कि ० तीनसे तीन अङ्क, दोसे दो अङ्क, एकसे एक अङ्क न्यून अर्थात् पूर्वाङ्क है। ० – ० = ० के अनुशीलनसे यह तथ्य सिद्ध है कि शून्यके पूर्व शून्य ही है, अर्थात् शून्य प्रथमाङ्क है।

वेदान्तप्रस्थानमें गन्ध पृथ्वीका निज गुण है। उसमें स्वकारण जलसे रस, जलकारण तेजसे रूप, तेजके कारण वायुसे स्पर्श, वायुके कारण आकाशसे शब्द - नामक गुण प्राप्त है। अभिप्राय यह है कि कारणके गुण कार्यमें अनुगत होते हैं। आकाशका कारण मायाशक्तिका लयस्थान निर्विशेष ब्रह्म है। अतः,

पृथ्वी – गन्ध = जल, जल – रस = तेज,

तेज – रूप = वायु, वायु – स्पर्श = आकाश

होता है। जबकि

पृथ्वी - पृथ्वी = ब्रह्म, जल - जल = ब्रह्म,
तेज - तेज = ब्रह्म, वायु - वायु = ब्रह्म,
आकाश - आकाश = ब्रह्म, ब्रह्म - ब्रह्म = ब्रह्म होता है।

तद्वत् गणितमें

१० - १ = ९, ९ - १ = ८, ८ - १ = ७,
७ - १ = ६, ६ - १ = ५, ५ - १ = ४,
४ - १ = ३, ३ - १ = २, २ - १ = १,
१ - १ = ०.

होता है। जबकि

१० - १० = ०, ९ - ९ = ०, ८ - ८ = ०,
७ - ७ = ०, ६ - ६ = ०, ५ - ५ = ०,
४ - ४ = ०, ३ - ३ = ०, २ - २ = ०, १ - १ = ०,
० - ० = ० होता है।

उक्त रीतिसे सन्निकट निर्विशेषकी सविशेषमें अनुगति मान्य है यथा; ब्रह्मकी आकाशमें, आकाशकी वायुमें, वायुकी तेजमें, तेजकी जलमें जलकी पृथ्वीमें अनुगतिके तुल्य ० की १ में, १ की २ में, २ की ३ में, ३ की ४ में, ४ की ५ में, ५ की ६ में, ६ की ७ में, ७ की ८ में, ८ की ९ में ९ की १०में अनुगति सिद्ध है।

नश्वर जगत् में अनश्वर ब्रह्मकी सत्ता अनुगत और अनुभूत है एकादि क्षयशील होनेके कारण नश्वर हैं। शून्य क्षयशून्य होनेके कारण अव्यय है -'यन्न व्येति तदव्ययम्' (प्रणवोपनिषत्)। जो जिसका लयस्थान होता है, वह उसका उद्गमस्थान भी होता है। १ - १ = ० के अनुशीलनसे यह तथ्य सिद्ध है कि शून्य एकका लयस्थान है। ० + १ = १ के अनुशीलनसे यह तथ्य सिद्ध है कि शून्य एकका उदयस्थान

है। जो जिसका लयस्थान और उद्गमस्थान होता है, वह उसमें अनुगत भी होता है। जैसे कि मृत्तिका घटादिका उदयस्थान तथा विलयस्थान होनेके कारण घटादिमें अनुगत होती है।

उक्तरीतिसे शून्यकी एकमें साक्षात् और दो आदिमें एकके द्वारसे अनुगति सिद्ध है। किसी भी अङ्कका उसीसे ऋण करनेपर शेष शून्य एकादिमें अपनी अनुगति सिद्ध करता है।

कदाचित् ० + ० = १ होता, तब निस्सन्देह शून्यका मान $\frac{१}{२}$ होता। अत एव शून्य सविशेष होनेके कारण अङ्कोंका मूल न होता।

४५. मूले मूलाभावादमूलं मूलम् ।।

(साङ्ख्यसूत्रम् १.६७)/८

"मूलका मूल असम्भव है, अत: अङ्कोंका मूल शून्य मूलरहित है।"

० + ० = ०, ० - ० = ०, ० × ० = ०, ० ÷ ० = ई.शून्य.

० + ० = ०

जबकि १ + १ = २, १ - १ = ०, १ × १ = १, १ ÷ १ = १.

उक्त समीकरणके अनुशीलनसे शून्यकी स्वप्रयुक्त योग, ऋण, गुणन तथा भागकी दशामें एकरूपता उसे अव्यय सिद्ध करती है, जबकि एककी स्वप्रयुक्त योग, ऋण, गुणन तथा भागकी दशामें विरूपता एकको व्ययशील सिद्ध करती है।

१ - १ = ०, १ ÷ १ = भागफल १. शेष ०.

२ − २ = ०, २ ÷ २ = भागफल १. शेष ०.
३ − ३ = ०, ३ ÷ ३ = भागफल १. शेष ०.
४ − ४ = ०, ४ ÷ ४ = भागफल १. शेष ०.
५ − ५ = ०, ५ ÷ ५ = भागफल १. शेष ०.
६ − ६ = ०, ७ ÷ ७ = भागफल १. शेष ०.
७ − ७ = ०, ८ ÷ ८ = भागफल १. शेष ०.
९ − ९ = ०, ९ ÷ ९ = भागफल १. शेष ०.

∵ २ + २ = ४ (योज्य + योजक = योगफल)
∴ २ − २ = ० (योगफल − योजक = योज्य)
∵ २ × १ = २
∴ २ ÷ २ = भागफल १, शेष ०.

किसी भी अङ्कका उसीसे ऋण करनेपर शेष ० होता है। तथा किसी भी अङ्कको उसीसे भाग देनेपर भागफल १, शेष ० होता है। (भाजक × भागफल) + शेष = भाज्य होता है। भाजक गुण्य तथा भागफल गुणक स्थानापन्न होता है। भाजक और भागफलके गुणनसे प्राप्त गुणनफलका भाज्यसे ऋण करनेपर शेष समुपलब्ध होता है। अत: योग, ऋण और गुणनका समवेतस्वरूप भाग होता है।

एकादि किसी भी अङ्कमें उसीसे भाग देनेपर भागफल एक और शेष शून्य होता है। किसी भी अङ्कमें उसीसे भाग देनेपर भागफल एकके अनुशीलनसे यह तथ्य सिद्ध है कि किसी भी अङ्कमें स्वयं उसकी एक वार अनुगति है। किसी भी अङ्कमें उसीसे भाग देनेपर शेष शून्यके अनुशीलनसे यह तथ्य सिद्ध है कि किसी भी अङ्कसे शून्य उतने अङ्क पूर्व होता है।

इस प्रकार, **किसी भी अङ्कसे शून्य उतने अङ्क पूर्ववर्ती होता है और किसी भी अङ्कमें स्वयं उसकी उतनी वार अनुगति होती है।**

एकादिके सन्दर्भमें चरितार्थ उक्त नय शून्यके सन्दर्भमें भी चरितार्थ हो, यह आवश्यक है। ० × ० = ०, १ × ० = ०, २ × ० = ०, ३ × ० = ० आदिके अनुशीलनसे यह तथ्य सिद्ध है कि किसी भी अङ्कसे ०का गुणन ० ही होता है। (भाजक × भागफल) + शेष = भाज्य इस नियमके अनुसार ० ÷ ० = ० की सिद्धि इस प्रकार है। –

०) ० (१
०
——
०

(० × १) + ०,
० + ० = ०

परन्तु शेष ० को पुन: भाज्य बनाने पर यह क्रम अबाधगतिसे प्राप्त होनेके कारण 'ई. ०' मान्य है। साथ ही भाज्य तथा भाजकसे अधिक भागफल असङ्गत है।

तद्वत् १ में १ से भाग देनेपर भागफल १ तथा शेष ० सुलभ होता है। भाज्य, भाजक तथा भागफलकी एकरूपता प्रशस्त भागप्रक्रमके प्रतिकूल है; अत: **(भाजक × भागफल) + शेष = भाज्य**का नियम २ को २ का भाज्य माननेपर प्रारम्भ होता है।

१) १ (१
१
——
०

२) २ (९
२
——
०

इस प्रकार, शून्य अभाज्याङ्क होनेके कारण अव्यय है।

४६.शून्यादेकाङ्कन्यूनस्य न विधिमुखे[ऽ]ङ्कशालिता।।

"शून्यसे एक अङ्क न्यूनकी विधिमुखसे अङ्कसंज्ञा असिद्ध है।

४७.मूले शून्यं विजानीयाच्छून्यं वै परं ब्रह्म।

(गणेशपूर्वतापिन्युपनिषत् ३.१)/ ९

"अङ्कोंके मूलमें ० रूप परब्रह्म सन्निहित है, ऐसा सम[झना] चाहिए।"

४८.स्वप्रयुक्त-वृद्धि-ह्रास-विरहत्वात् शून्यस्या[ङ्क]मूलता ।।

"स्वयंसे स्वयंका योग, ऋण, गुणन तथा भागकी दशामें वृ[द्धि] तथा ह्राससे विरहित निर्विकार रहनेके कारण शून्यकी अङ्कमूलता सि[द्ध] है।"

अभिप्राय यह है कि शून्यका शून्यसे योग, ऋण, गुणन तथा भा[ग]

वृद्धि तथा ह्रासका अप्रयोजक होनेसे अचरितार्थ है। अत एव शून्यकी अङ्कमूलता अचरितार्थ है।

४९. शून्येन गुणितं शून्यम्।।

"शून्यसे गुणित अङ्कको शून्य समझे। अभिप्राय यह है कि एकादि अङ्कको शून्यसे गुणन करनेपर गुणनफल शून्य होता है।।"

१ × ० = ०, २ × ० = ०, ३ × ० = ० आदि।

५०.एकन्यूनेन शून्यत्वाच्छून्यादेकाधि- केनैकत्वात् स्वेन गुणितेन वृद्धिविरहत्वाच्चैकस्य प्रथमगणेयता।।

"एकका ऋण करनेपर ० होनेके कारण, शून्यमें एक जोड़नेपर एक होनेके कारण और अपनेसे गुणितके द्वारा वृद्धि विरहित होनेके कारण एककी प्रथम गणेयता सिद्ध है अर्थात् गणनाकी दृष्टिसे एक प्रथमाङ्क है।"

अभिप्राय यह है कि किसी भी अङ्कका उसीसे योग होनेपर अङ्कमें वृद्धि शून्यातिरिक्त सर्वत्र चरितार्थ है। तद्वत् स्वयंसे स्वयंका ऋण करनेपर ० की समुपलब्धि शून्यसहित सर्वत्र चरितार्थ है। तद्वत् स्वयंसे स्वयंमें भाग देनेपर भागफल एककी समुपलब्धि एक तथा शून्यके अतिरिक्त सर्वत्र सुलभ है। परन्तु शून्यसे एक एक अधिक तथा एकसे एकका गुणन एक होनेके कारण एक प्रथम गणना योग्य है।।

५१.स्वप्रयुक्तोत्तरत्वादेकस्य बीजरूपता ।।

"स्वयंसे जुड़कर साक्षात् उत्तरवर्ती अङ्क दो होनेके कारण एक, अङ्कोंका बीज सिद्ध होता है।।"

५२. उत्तरस्थानयोगित्वात् शून्यस्य सर्वाङ्क...

"शून्यका अग्रिम पादविन्यासरूप सोपान एक है। त... पादविन्यास दो है। तदनन्तर पादविन्यास तीन है। इस प्रकार ... सर्वाङ्करूपता सिद्ध है।"

५३.एकं तस्य वृद्धिर्ह्रासो वा गणितम् ।।

"एक और उसकी वृद्धि या उसका ह्रास गणित है।"

१ + १ = २, २ + १ = ३, १ − १ = ०. के अनुशीलन... तथ्य सिद्ध है कि एककी क्रमिक वृद्धि दो, तीन आदि अङ्क हैं और उ... ह्रास शून्य है। सैद्धान्तिक धरातल पर शून्यका ह्रास अर्थात् उससे... अङ्क असम्भव है । एकका ह्रास शून्य है और उसका विकास दो ... अग्रिम अङ्क हैं । गणित जगत्में एकको लेकर वृद्धिप्रद योगकी और ह्रास... ऋणकी प्रक्रिया चरितार्थ होनेके कारण एकका उत्कर्ष और अपकर्ष ... है । शून्यमें वृद्धिका प्रथम प्रयोजक भी एक ही है ; जब कि ह्रास... प्रयोजक एक भी नहीं है । वस्तुतः निर्विशेष एकका नाम ही शून्य है... सविशेष शून्य एक है ।

५४.न हि भावानां निरन्वयो निरुपाख्यो विनाशः

(शाङ्करभाष्य-ब्रह्मसूत्र २. २. ४. २२)/...

"भावोंका निरन्वय अवस्तु (अलीक) और निरुपाख्य वि... नहीं हो सकता।"

'मैटर कैन नाइदर वि क्रियेटेड नोर डिसट्वाइड'- जैसे पूर्व विद्यमानकी कारक व्यापारोंके द्वारा प्रकारान्तर अतिरिक्त गुण तथा कर्मके सहित अभिव्यक्ति उत्पत्ति है, वैसे ही विद्यमान व्यक्ति तथा वस्तुकी गुण तथा कर्मके सहित कारणभावापन्नतारूप अदर्शन ही विनाश है। यथा वेदान्तप्रस्थानमें शब्द, स्पर्श, रूप, रस – सम्पन्न द्रवावस्थापन्न जलसे शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धगुण – सम्पन्न कठिन पृथ्वीकी अभिव्यक्ति उसकी उत्पत्ति है तथा लयदशामें जलरूपसे पृथ्वीकी स्थिति उसका नाश है। अथवा शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धगुण – सम्पन्न जलाहरणरूप कर्ममें अदक्ष मिट्टीसे शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धगुण – सम्पन्न जलाहरणरूप कर्ममें समर्थ घटकी अभिव्यक्ति उसकी उत्पत्ति है तथा लयदशामें मृत्तिकारूपसे घटकी स्थिति उसका नाश है। तद्वत् गणितप्रस्थानमें एकादिसे दो आदिकी अभिव्यक्ति और दो आदिका एकादिमें लय प्राप्त है। यथा, ० + १ = १, १ + १ = २, २ + १ = ३ आदि। ३ − १ = २ , २ − १ = १ आदि। एकादिके तुल्य १ − १ = ० को भी भावात्मक मानना ही उचित है । शून्य एकादिका लयस्थान है; परन्तु शून्यका कोई लयस्थान नहीं है ।

५५. नाशः कारणलयः ।।

(साङ्ख्यसूत्र १.१२१)/११

"गणितशास्त्रमें साङ्ख्यशास्त्रसदृश कारणलय या कारणभावापत्ति ही नाश है। अतः एकके अवान्तर भेदोंका उपशम उनकी एकभावापत्ति है, न कि उनका नाश; तद्वत् एककी एकाङ्कन्यूनता उसकी शून्यभावापत्ति है, न कि उसका अभावात्मक विलोप या नाश ।।"

५६.यस्तु यस्यादिरन्तश्च स वै मध्यं च तस्य सन्।।

(श्रीमद्भागवत ११. २४. १७; १८)/१२

"जिसके आदि और अन्तमें जो है, वही मध्यमें भी है, वही सत्य है। जैसे कि जलतरङ्गके आदि और अन्तमें जल स्थित है, अर्थात् जलतरङ्गका आदि तथा अन्त जल है। जलके अतिरिक्त तरङ्ग मध्यमें भी असिद्ध होनेके कारण तरङ्गका मध्य भी जल ही सिद्ध है।"

जैसेकि एकका भी पूर्ववर्ती होनेके कारण शून्य अङ्कादि है। एकके आरोहक्रमसे सब अङ्कोंमें वह अनुगत है, अर्थात् मध्यवर्ती है एवम् एकन्यूनतारूप अवरोहक्रमसे परार्द्धादिका वह लयस्थान अर्थात् अन्त है।

० + १ = १, १ + १ = २, १ + १ + १ = ३ आदिके एवम् १-१= ०के अनुशीलनसे शून्य अङ्कोंका आदि सिद्ध है। ०+१= १, ०+१+१= २ आदिके अनुशीलनसे शून्य मध्यवर्ती सिद्ध है। ३ - १ =२, २ - १ = १, १ - १ = ० के अनुशीलनसे शून्य अङ्कोंका अन्त सिद्ध है।

५७. आदावन्तेऽपि च सत्त्वानां यद् ध्रुवं तदेवान्तरालेऽपि।।

(श्रीमद्भागवत ६.१६.३६)/१३

"आदि और अन्तमें रहनेवाला जो ध्रुव तत्त्व है, वही मध्यमें भी है।।"

५८.शून्यं तत्त्वं भावो विनश्यति वस्तुधर्मत्वाद्विनाशस्य ।।

(साङ्ख्यसूत्र १.४४) /१४

"शून्य तत्त्व है। एकादि भावाङ्क उपचय और अपचयशील होनेसे विनश्वर हैं। एकादिरूप सविशेषसंज्ञक वस्तुका विनाश धर्म है।।"

५९.अविशेषाद्विशेषारम्भः।।

(साङ्ख्यसूत्र ३.१)/१५

"अविशेषसे विशेषका आरम्भ होता है।"

निर्विशेष शून्यसे एकादि भावात्मक अङ्कोंका प्रादुर्भाव होनेके कारण शून्य आकाशकुसुमादि सदृश अलीक नहीं है; वह परम भावरूप तत्त्व ही है।

६०. नावस्तुतो वस्तुसिद्धिः।।

(साङ्ख्यसूत्र १. ७८)/१६

"अवस्तुसे वस्तुसिद्धि असम्भव है।"

अभिप्राय यह है कि अभावाङ्कसे भावाङ्ककी सिद्धि असम्भव है। यदि शून्य अभावाङ्क हो , तब उससे दशमलव - पद्धतिकी निष्पत्ति कथमपि सम्भव न हो।

६१. भावान्तरमभावो हि (पदार्थान्तर) कयाचित्तु व्यपेक्षया।।

(श्लोकवार्तिक पृ. ५६६)/१७

"मीमांसकोंके मतमें भावान्तरका नाम ही अभाव है। एक भाव अन्य भावकी अपेक्षा अभाव होता है। जैसे घट स्वरूपत: भावरूप होनेपर भी पटादिका अभाव होता है। तद्वत् शून्य एक नहीं है और एक शून्य नहीं है, परन्तु न तो शून्य ही अभाव है और न एक ही अभाव है।।"

६२.पूर्वभावित्वे द्वयोरेकतरस्य हानेऽन्यतरयोग:।।

(साङ्ख्यसूत्र १.७५)/१८

"पुरुष तथा प्रकृतिके तुल्य शून्य और एक दोनोंके अनादि होनेपर भी शून्यसंज्ञक एकके परिणामी न होनेसे दूसरे एकका परिणामी होना सिद्ध है।"

६३.शून्याधिष्ठितैकस्यैकाङ्कता , अत एवानादिता।।

"शून्यसे अधिष्ठित अर्थात् संयुक्त एककी एकाङ्कता है, अतएव उसकी अनादिता है।।"

अभिप्राय यह हे कि शून्य एकसे जुड़कर एक होता है, अत: शून्यके सदृश एकको अनादि मानना आवश्यक है। यह तथ्य ⊙ १ - १ = ०, ∴ ० + १ = १ के अनुशीलनसे सिद्ध है।

६४. आद्यहेतुता तद्द्वारा पारम्पर्येण।।

(साङ्ख्यसूत्र १. १.७४)/१९

" लयकी क्रमिक परम्पराके अवसानरूप एकके द्वारसे शून्यकी मूलकारणता सिद्ध है।"

६५. नासतोऽदृष्टत्वान्नृशृङ्गवत् ।।

"अभावसे कार्योत्पत्ति नहीं हो सकती, क्यों कि असत् नरशृङ्गादिसे कार्योत्पत्ति नहीं देखी जाती।"

अभिप्राय यह है कि शून्यसे एकादिसहित दशमलवपद्धतिकी सिद्धि शून्यकी अभावरूपताकी मान्यता निरस्त करती है।

६६. लयोदयाधिकरणत्वाच्छून्यस्य भावरूपता।।

"अभाव किसीके लय तथा उदयका स्थान नहीं होता, जबकि परोवरीयक्रमसे अङ्कोंके लय तथा उदयका अधिकरण होनेके कारण शून्यकी भावरूपता सिद्ध है।"

६७. नाभावे वृद्धि - ह्रासता ।।

"अभावमें वृद्धि तथा ह्रास असम्भव हैं।।"

६८. शून्ये वृद्धिशक्तिता।।

"शून्यमें ह्रास असम्भव होनेपर भी वृद्धिशक्तिसन्निहित होनेके कारण वृद्धि दृष्टिगोचर है।।"

६९. अत एव शून्यस्यानादिभावरूपता - ऽभावकल्पता च।।

''अतएव शून्यकी अनादि भावरूपता तथा अभावकल्पता ... है। ''

७०. अभावकल्पतैव निर्विशेषता।।

''दार्शनिकधरातलपर अभावकल्पताका नाम ही निर्विशेषता है।

७१. अविशेषश्चोभयो: ।।

(साङ्ख्यसूत्र १.६)/ २०

'' शून्य और एक दोनोंका साम्य है। निर्विशेष एक शून्य है; सविशेष शून्य एक है।''

७२. अनुलोमेन जायन्ते लीयन्ते प्रतिलोमत:

(महाभारतशान्तिपर्व ३०६.१२)/ २१

''कारणसे कार्य अनुलोमक्रमसे उत्पन्न होते हैं और कारणमें कार्य प्रतिलोमक्रमसे लीन होते हैं।''

यथा ० + १ = १, १ + १ = २, २ + १ = ३, ३ + १ = ४, ४ + १ = ५, ५ + १ = ६, ६ + १ = ७, ७ + १ = ८, ८ + १ = ९, ९ + १ = १०.

१० - १ = ९, ९ - १ = ८, ८ - १ = ७, ७ - १ = ६, ६ - १ = ५, ५ - १ = ४, ४ - १ = ३, ३ - १ = २, २ - १ = १, १ - १ = ०.

७३. शून्यं कृत्वा निरात्मकम्।।

(अमृतनादोपनिषत् १२)/ २२

''किसी भी वस्तु या अङ्ककी सविशेषताका पूर्ण अपलाप अभावविलक्षण शून्यभावापत्ति है। ''

७४. शिष्यते शेषसंज्ञ:।।

(श्रीमद्भागवत १०.३.२५)/ २३

''महाप्रलयमें परोवरीयक्रमसे सबका लयस्थान परमात्माके तुल्य अङ्कगणितमें ऋणात्मक लयविहीन शेषरूपसे शून्य ही शेष रहता है। दर्शनके तुल्य गणितमें सबका उद्भवस्थान ही सबका लयस्थान मान्य है। एकादिका उद्भवस्थान होनेके कारण शून्य एकादि अङ्कोंका लयस्थान है। अत एव शून्य शेषका भी शेष है। ''

यथा, १० - १ = ९, ९ - १ = ८, ८ - १ = ७, ७ - १ = ६, ६ - १ = ५, ५ - १ = ४, ४ - १ = ३, ३ - १ = २, २ - १ = १, १ - १ = ०.

१०) १९ (१
१०
——
०९

११) १९ (१
११
——
०८

❀

१२) १९ (१
०७

❀

१३) १९ (१
१३
—
०६

❀

१४) १९ (१
१४
—
०५

❀

१५) १९ (१
१५
—
०४

❀

१६) १९ (१
१६
—
०३

❀

१७) १९ (१
१७
—
०२

❀

१८) १९ (१
१८
—
०१

❀

१९) १९ (१
१९
—
०

उक्त उदाहरणोंमें भाज्य १९ तथा भाजक क्रमशः १०, ११, १२, १३, १४, १५, १६, १७, १८ और १९ है तथा शेष क्रमशः ९, ८, ७, ६, ५, ४, ३, २, १ और ० है।

७५. शून्यो निरालय:।।

"शून्य निराश्रय है।"

२ – १ = १ के अनुशीलनसे यह तथ्य सिद्ध है कि दोका आश्रय एक है। १ – १ = ० के अनुशीलनसे यह तथ्य सिद्ध है कि एकका आश्रय शून्य है। तद्वत् ० – ० = ० के अनुशीलनसे यह तथ्य सिद्ध है कि शून्य निराश्रय है।

❋

७६. एकवर्जित एकात्मा ।।

(तेजोबिन्दूपनिषत् ४.३४)/२४

"शून्य एक होता हुआ भी एकका समाश्रय निर्विशेषरूप है ।"

७७. एकसङ्ख्याविहीनात्मा ।।

(तेजोबिन्दूपनिषत् ३.२९)/२५

"शून्य एक सङ्ख्यासे विहीन अर्थात् एक ऋण एकसे सम्प्राप्त है। अतएव मूलाङ्क है।"

७८.अनन्तस्य न तस्यान्त: सङ्ख्यानं चापि विद्यते।।

(ब्रह्मपुराण २३.२६)/२६

"उस अनन्तका नाश और सङ्ख्यान भी सम्भव नहीं।"

शून्य अनन्त है। अत एव उसका नाश और परिगणन असम्भव है। शून्याश्रित एकादिकी अनन्तता शून्यकी अनन्तताका अनुमापक है। 'शून्य अङ्काश्रित है' – ऐसी मान्यता भ्रम है। निर्विशेषकी आश्रयता लोक - वेदसम्मत है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध – संज्ञक पाँच गुणसम्पन्न

रस– नामक चार गुणसम्पन्न जलकी

पृथ्वीकी अपेक्षा शब्द, स्पर्श, रूप, रस– नामक चार गुणसम्पन्न जलकी आश्रयता; शब्द, स्पर्श, रूप – संज्ञक तीन गुणसम्पन्न तेजकी आश्रयता; अपेक्षा शब्द, स्पर्श, रूप – संज्ञक तीन गुणसम्पन्न तेजकी अपेक्षा शब्द, स्पर्श – शब्द, स्पर्श, रूप – संज्ञक तीन गुणसम्पन्न वायुकी आश्रयता ; तद्वत् शब्द, स्पर्श–संज्ञक दो नामक दो गुणसम्पन्न वायुकी आश्रयता ; तद्वत् शब्द – संज्ञक एक गुणसम्पन्न आकाशकी गुणसम्पन्न वायुकी अपेक्षा शब्द – संज्ञक एक गुणसम्पन्न आकाशकी आश्रयता लोक – वेदसम्मत है। सन्निकट निर्विशेषका नाम आश्रय और सन्निकट सविशेषका नाम आश्रित है।

मौलिकता आश्रयता है। दसका मूल नौ, नौका मूल आठ, आठका मूल सात, सातका मूल छह, छहका मूल पाँच, पाँचका मूल चार, चारका मूल तीन, तीनका मूल दो, दोका मूल एक तथा एकका मूल शून्य है। अतएव शून्यकी सर्वाश्रयता सिद्ध है। अत: केवल शून्यकी गणना भी असङ्गत है।

१० में ० आश्रित तथा १ आश्रय प्रतीत होता है। परन्तु वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है। कारण यह है कि १० में ० इकाई – स्थानापन्न होनेके कारण तथा १ × ० = ० उसका मान होनेके कारण वह निर्विशेष है। अत एव उसकी आश्रयता चरितार्थ है। ०१ में १ आश्रित तथा ० आश्रय प्रतीत होता है। परन्तु वस्तुस्थिति यह है कि ० १ में १ इकाई – स्थानापन्न और ० दहाई – स्थानापन्न है। १ × १ = १ इकाई – स्थानापन्न एकका मान है और १० × ० = ० दहाई – स्थानापन्न शून्यका मान है। अत एव शून्य इकाई, दहाई आदि स्थलोंमें सर्वत्र निर्विशेष होनेके कारण आश्रय है।

७९. अनन्त आद्य: ।।

(श्रीमद्भागवत १०. १४. २३)/२७

"शून्य अनन्त और आद्य है।"

शून्य चरम शेष होनेके कारण कालभेदसे कालकवलित नहीं होता, इकाई - दहाई - सैकड़ादि - स्थानापन्न होनेके कारण देशकवलित नहीं होता, एकादिका मूलाङ्क होनेके कारण एकादिमें अनुगतिके बलपर वस्तुभेदसे उच्छिन्न नहीं होता। इस प्रकार काल, देश और वस्तुकृत परिच्छेदशून्य होनेके कारण शून्यकी अनन्तता चरितार्थ है। वह अङ्कमूल अङ्कादि तथा एकादिका अन्त अनन्त है।

ॐ

८०.स्वेन विभक्तेनैकादीनां शून्यैकशेषफलत्वाच्छून्यैकस्यादनाद्यनन्तता ।।

"स्वयंसे विभक्त तथा विभाजित होनेपर एकादिकोंका शेष शून्य तथा भागफल एक होनेके कारण शून्य तथा एकको अनादिता तथा अनन्तता सिद्ध है।"

यह तथ्य १ – १ = ० तथा २ – २ = ०, ३ – ३ = ० के अनुशीलनसे सिद्ध है। १ – १ = ० के अनुशीलनसे शून्य एकका मूल सिद्ध है। १ – १ = ०, २ – २ = ०, ३ – ३ = ० के अनुशीलनसे शून्य एकादिका अन्त अनन्त सिद्ध है। १ ÷ १, २ ÷ २, ३ ÷ ३ आदि स्थलोंमें भागफल एक तथा शेष शून्यके अनुशीलनसे एक तथा शून्य आदि अङ्क सिद्ध होते हैं। १०, १००, १००० आदिके अनुशीलनसे शून्य तथा एक अनन्त सिद्ध होते हैं।

'० + ० = ०, ० – ० = ०, ० × ० = ०, ० ÷ ० = ई. ०.' समीकरणोंके अनुशीलनसे यह तथ्य सिद्ध है कि शून्य स्वयंसे युक्त, वियुक्त, गुणित या विभक्त होकर ० ही रहता है।

१ + ० = १, १ – ० = १, १ × ० = ०, १ ÷ ० = ई. ०.

२ + ० = २, २ – ० = २, २ × ० = ०, २ ÷ ० = ई. ०. आदि समीकरणोंके अनुशीलनसे यह तथ्य सिद्ध है कि एकादि किसी भी अङ्कसे शून्यका योग करनेपर योगफल योज्याङ्क एकादि ही होता है। तद्वत् एकादि किसी भी अङ्कसे शून्यका ऋण करनेपर शेष ऋण्याङ्क एकादि ही होता है। एकादि किसी भी अङ्कसे शून्यका गुणन करनेपर गुणनफल गुणकाङ्क शून्य ही होता है। तद्वत् एकादि किसी भी अङ्कमें शून्यसे भाग देनेपर भाज्यर्णक भाजक शून्य ही होता है।

अभिप्राय यह है कि शून्य स्वत: निर्विशेष, निर्विकार, अव्यय है। एकादि अङ्कान्तरसे युक्त या वियुक्त होकर उनमें विशेषताका आधायक नहीं है। परन्तु एकादिका गुणक या विभाजक होकर उनमें स्वानुरूपता अर्थात् शून्यतासंज्ञक निर्विशेषताका आधायक है। इस प्रकार, शून्य स्वयं निर्विकार तथा निर्विशेष होता हुआ स्वानुरूप निर्विशेषताका आधायक है। अत: शून्यकी भावाङ्करूपता और अङ्कमूलता चरितार्थ है। अभिप्राय यह है कि शून्य वेदान्तसम्मत ब्रह्मतुल्य अनादि एवम् निर्गुण होनेके कारण अव्यय है।

सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु सर्वासु च विभक्तिषु ।
वचनेषु च सर्वेषु यन्न व्येति तदव्ययम् ।।

(प्रणवोपनिषत्)

"अनादित्वादनन्तत्वात्तदनन्तमथाव्ययम्"

(महाभारत-शान्तिपर्व २०६. १९)

"जो अनादि, अनन्त और निर्विशेष अर्थात् निर्गुण होता
अक्षय और अव्यय होता है।

१ + १ = २, १ − १ = ०, १ × १ = १, १ ÷ १ =

अनुशीलनसे यह तथ्य सिद्ध है कि एक स्वयंसे युक्त होकर उत्तराङ्क
जनक है। वह स्वयंसे वियुक्त होकर पूर्वाङ्क शून्य होनेमें समर्थ है।
गुणित होकर स्वयंको गुणनफलके रूपमें एवम् स्वयंसे विभाजित हो
स्वयंका विभाजक होकर स्वयंको ही भागफलके रूपमें प्रस्तुत करता
अभिप्राय यह है कि एक स्वप्रयुक्त वृद्धि तथा ह्रासप्रद होता
स्वानुरूपस्थितिशील होनेके कारण साङ्ख्योक्त प्रकृति, प्रधान या अ
तथा वेदान्तसम्मत मायातुल्य है।

२ + २ = ४, २ − २ = ०, २ × २ = ४, २ ÷ २

के अनुशीलनसे यह तथ्य सिद्ध है कि दो स्वयंसे युक्त या गुणित
समान सङ्ख्याके समुत्पादक होते हैं। दो स्वयंसे वियुक्त होकर मूलाङ्क
होनेमें समर्थ है। वह स्वयंसे विभजित या स्वयंका विभाजक होकर
भागफलके रूपमें प्रस्तुत करता है। अभिप्राय यह है कि दो स्वप्रयुक्त
तथा ह्रासप्रद होता हुआ स्वानुरूपस्थितिशील न होनेके कारण साङ्ख्य
महत्, अहम् और शब्द − स्पर्श − रूप − रस − गन्धसंज्ञक प्र
विकृतिकोटिका अङ्क है।

८१.एतेन सर्वे व्याख्याता:।।"

(ब्रह्मसूत्र १.४.२८)/२८

"दोके द्वारसे तीन, चार आदि सब अङ्कोंकी व्याख्या कर
गयी।"

३ + ३ = ६, ४ + ४ = ८, ५ + ५ = १०.
३ × ३ = ९, ४ × ४ = १६, ५ × ५ = २५.
३ − ३ = ०, ४ − ४ = ०, ५ − ५ = ०, ६ ÷ ६ = १,
७ ÷ ७ = १, ८ ÷ ८ = १. के अनुशीलनसे यह तथ्य सिद्ध है कि
तीन, चार आदि अङ्कोंमें स्वयंसे ही योग और गुणन करनेपर वृद्धि प्राप्त है।
सर्वत्र योगकी अपेक्षा गुणनफल न्यून नहीं है, दोसे दोका योगफल और
गुणनफल तुल्य ४ है, तीन आदि स्थलोंमें योगफलसे गुणनफल अधिक
है। स्वाधिक एक सर्वत्र उत्तराङ्कका जनक है। अत: एकाधिक वृद्धिक्रममें
अविरामताके कारण गणितप्रस्थानमें विकृतिकोटिकी अन्तिम सङ्ख्या नहीं
है। जबकि साङ्ख्यादिप्रस्थानमें पृथिवीसे समुत्पन्न घटादि तथा वृक्षादिरूप
कार्य पृथ्वीनिष्ठ शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धातिरिक्त छठे गुणवाले सिद्ध
न होनेके कारण पृथिवी चरम विकृति मान्य है एवम् घटादि तथा वृक्षादिरूप
कार्य तारतम्यज सङ्घात मान्य हैं। साङ्ख्यादिप्रस्थानमें विजातीय − संज्ञक
तत्त्वान्तरपरिणामकी चरम अवधि पृथिवी − पर्यन्त ही मान्य है।

परन्तु दार्शनिक धरातलपर आदिमकी अनुपलब्धिके तुल्य अन्तिमकी
अनुपलब्धि भी त्रुटिग्रस्त मान्य है। ऐसी स्थितिमें गणितप्रस्थानमें शून्यको
आदिम अङ्क माननेके तुल्य दार्शनिक आधारपर किसी अङ्कको अन्तिम
मानना भी आवश्यक है। दर्शनप्रस्थानमें पृथिवी − निष्ठ पाँच गुणोंकी
घटादि तथा वृक्षादिमें आवृत्तिके तुल्य ०, १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८,
९ की अग्रिम चरणोंमें आवृत्ति परिलक्षित है । यथा,

०, १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९.
१०, ११, १२, १३, १४, १५, १६, १७, १८, १९.
२०, २१, २२, २३, २४, २५, २६, २७, २८, २९.

संलग्नतासिद्धान्तके अनुसार १ + ९ = १०में १ का स्था... १ तथा ९ का स्थानापन्न ० है, १ + ९९ = १००में १ का स्था... १ तथा ९ ९का स्थानापन्न ०० है। यह क्रम अग्रिम चरणों... परिलक्षित है।

उक्त समीकरणमें एक अङ्ककी सबसे छोटी और बड़ी स... योगसे दो अङ्कोंकी सबसे छोटी; तद्वत् दो अङ्कोंकी सबसे छोटी... बड़ी सङ्ख्याके योगसे तीन अङ्कोंकी सबसे छोटी सङ्ख्याकी समुप... आदिका क्रम अग्रिम चरणोंमें भी परिलक्षित है।

० + १ = १
१ + १ = २
१ + २ = ३
१ + ३ = ४
१ + ४ = ५
१ + ५ = ६
१ + ६ = ७
१ + ७ = ८
१ + ८ = ९

१ + ९ = १०
१ + १० = ११(१स्थानापन्न १, १ + ०स्थानापन्न १)
१ + ११ = १२ (१स्थानापन्न १, १ + १स्थानापन्न २)
१ + १२ = १३ (१स्थानापन्न १, १ + २स्थानापन्न ३)
१ + १३ = १४ (१स्थानापन्न १, १ + ३स्थानापन्न ४)
१ + १४ = १५ (१स्थानापन्न १, १ + ४स्थानापन्न ५)

१ + १५ = १६ (१स्थानापन्न १, १ + ५स्थानापन्न ६)
१ + १६ = १७ (१स्थानापन्न १, १ + ६स्थानापन्न ७)
१ + १७ = १८ (१स्थानापन्न १, १ + ७स्थानापन्न ८)
१ + १८ = १९ (१स्थानापन्न १, १ + ८स्थानापन्न ९)

१ + ९ = १० (१स्थानापन्न १, ९ स्थानापन्न ०)
१ + ९९ = १००(१स्थानापन्न १, ९९स्थानापन्न ००)
१ + ९९९ = १०००(१स्थानापन्न १, ९९९ स्थानापन्न ०००)

उक्तरीतिसे ० का क्रमिक पर्यसान ९ और ९ का पर्यसान ० है। अतएव अङ्कोंका आदि और अन्त शून्य है।

८२. सर्वाण्यशून्यानि करोत्यनन्तः ।।

(महाभारत-शान्तिपर्व २८०.६४)/ २९

''अनन्तसंज्ञक शून्य स्वेतर सब अङ्कोंको अशून्य करता है अर्थात् सबको सत्ता और स्फूर्ति प्रदान कर सविशेष करता है। अभिप्राय यह है कि सबको अस्तित्व प्रदान करता है और सबकी उपयोगिताको सिद्ध करता है।।"

८३. सर्वानुस्यूतमद्वयम् ।।

(श्रीमद्भागवत ३. २७. ११) / ३०

''ब्रह्मसदृश शून्य सबमें अनुस्यूत और अद्वय है।"

एकादिका आदि होनेके कारण शून्य एकादिमें अनुगत है। जो जिसका आदि होता है, वह उसमें अनुगत होता है; जैसे कि जलतरङ्गादिमें

जल। अत एव उसकी अद्वयता भी सिद्ध है।

८४. अनादित्वादनन्तत्वात्तदनन्तमथा- व्ययम्।।

(महाभारत-शान्तिपर्व २०६. १९)/ ३१

"जो आदि और अन्तसे रहित होता है, वह अपरिच्छिन्न और अव्यय होता है। आदिरहित होनेके कारण और अन्तरहित होनेके कारण शून्य ब्रह्मतुल्य असीम तथा अनन्त है।"

८५. मायाहीनं मायिकं वा दन्तसंज्ञम्।।

(मुद्गलपुराण १.३२.७) /३२

"मायासंज्ञक एक और मायिक (मायाकार्य) दो आदिसे हीन 'एकदन्त' में 'दन्त' है।।"

८६.मायया सह मायाविकारैः संयुक्तमेक-शब्दप्रवाचकम् ।।

(मुद्गलपुराण १.३२.६)/ ३३

". 'एकदन्त' में 'एक' – शब्दका अर्थ 'मायासहित मायिक प्रपञ्चसे संयुक्त' है।"

८७. शक्तिशक्तिमतोरनन्यत्वात् ।।

(श्रीमद्भगवद्गीता - शाङ्करभाष्य १४.२७)/ ३४

"शक्ति तथा शक्तिमान् में अभेद है।"

मृत्तिकामें रहनेवाली घटोत्पादिनी शक्तिका अपने आश्रय मिट्टीसे, तद्वत् अग्निमें रहनेवाली दाहिकाशक्तिका अपने आश्रय अग्निसे अभेद है। निर्विशेष अनादि शून्यकी सविशेष अनादि एक शक्ति है। दो, तीन आदि शून्याधिष्ठित एकके कार्य हैं।

उक्त रीतिसे ब्रह्मसंज्ञक शून्यकी शक्ति एक है। अत एव दोनोंमें अभेद है।

८८. शक्तिर्न शक्तात्पृथक् ।।

(पञ्चदशी १३.१)/ ३५

"शक्ति शक्तिमान् से पृथक् नहीं होती।।"

शक्तिका पूर्व पादक्षेप शक्तिमान् है और शक्तिमान्का उत्तरपादक्षेप शक्ति है। यह तथ्य १ - १ = ०, ० + १ = १, के अनुशीलनसे सिद्ध है।

८९.यदविज्ञेयं तदव्यक्तम् ।।

(अव्यक्तोपनिषत् १)/ ३६

"जो अविज्ञेय है, वह अव्यक्त है।"

शून्य अविज्ञेय होनेके कारण अव्यक्त है।

९०.दिवाकरारूढराहुवत् ।।

"सूर्यसमारूढ राहुके सदृश।।"

बिना एकादि सविशेषके शून्यकी विज्ञेयता उसी प्रकार असम्भव

है, जिस प्रकार सूर्य तथा सोमके बिना राहुका। परन्तु सूर्य या चन्द्र समारूढ होकर राहुका दर्शन जिस प्रकार सम्भव है, उसी प्रकार एकादि समारूढतासंज्ञक ग्रहणदशामें शून्यका दर्शन सम्भव है। अत: शून्यका भावस्वरूप अविज्ञेयता सिद्ध है।।

११.यद् व्यज्यते तद् व्यक्तस्य व्यक्तत्वम्।।

(अव्यक्तोपनिषत् ३)/ ३७

"जो व्यक्त होता है, वह व्यक्तका व्यक्तत्व है।"

० + १ = १ के अनुशीलनसे यह तथ्य सिद्ध है कि शून्याधिष्ठित अर्थात् शून्यसे तादात्म्यापन्न एक प्रयोगदशामें केवल एक होता है।

१२.अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्त:।।

(श्रीमद्भगवद्गीता ८. २१)/ ३८

"नौमें आठ, आठमें सात, सातमें छह, छहमें पाँच, पाँचमें चार, चारमें तीन, तीनमें दो, दोमें एक अव्यक्तरूपसे विद्यमान है। शून्यमें एकके योगसे एककी सिद्धि, दोके योगसे दोकी, तीनके योगसे तीनकी सिद्धि उसकी एकादिमें अनुगति सिद्ध करती है। अत: शून्यको अव्यक्तका भी अव्यक्त अर्थात् सनातन अव्यक्तसंज्ञक अव्यक्ताक्षर कहा गया है।

१३. एकानेकवर्जितम् शून्यम्।।

(मुद्गलपुराण १.६.७)/ ३९

"एक तथा अनेकरहित शून्य है।।"

१४.क्रियास्विव वस्तुनि विकल्पासिद्धे:।।

(छान्दोग्योपनिषत् - शाङ्करभाष्य ३.१९.१)/ ४०

"क्रियामें विकल्प होनेपर भी वस्तुमें विकल्प असिद्ध है, अत: एकादिसे संलग्न शून्यको भाव तथा असंलग्न शून्यको अभाव मानना अनुचित है। अभिप्राय यह है कि १०, २० आदिमें इकाई – स्थानापन्न ० को अभाव ० को भाव तथा ०१, ०२ आदिमें दहाई –स्थानापन्न ० को अभाव मानना अयुक्त है। प्रक्रियान्तरका आलम्बन लेकर भी गुणनादिकी सिद्धि सम्भव है, परन्तु अङ्करूपसे प्रसिद्ध शून्यको कहीं भाव और कहीं अभाव या सर्वत्र अभाव मानना सर्वथा अनुचित है, उसे सर्वत्र भाव मानना ही समीचीन है।।"

१५.अशून्यं शून्यमित्याहु:।।

(बौद्धागम)/ ४१

"अशून्यं शून्यमित्याहु: शून्यं चाभाव उच्यते।
अभाव: शून्यं विज्ञेयो यत्र भावं लयं गत:।।" (बौद्धागम)

"मनीषियोंने अशून्यको ही शून्य माना है। भावोंका लयस्थान शून्य कथनमात्रका शून्य है। शून्यको अभाव कहनेका तात्पर्य भावोंका विलयस्थान अभावात्मक अदर्शनमात्र है, न कि सर्वथा अभाव ही।।"

एकके द्वारसे दो आदिका लयस्थान शून्य एकके द्वारसे दो आदिका उदयस्थान भी है। तद्वत् शून्य ही एकादिका स्थितिस्थान भी है।–

१ - १ = ०के अनुशीलनसे शून्य एकका लयस्थान सिद्ध है। ०

+ १ = १ के अनुसन्धानसे शून्य एकका उदयस्थान सिद्ध है। ०+... ०+३=३, ०+९= ९ आदिके अनुगमसे शून्य दो, तीन ... स्थितिस्थान सिद्ध होता है।

दार्शनिक धरातलपर शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धगुण... पृथ्वीसे शब्द, स्पर्श, रूप, रसगुणसम्पन्न जलका कर्षणकर ... गन्धगुणसम्पन्न पृथिवी शेष रहती है। तद्वत् गन्धगुणसम्पन्न पृथि... जलको कर्षित करनेपर शब्द, स्पर्श, रूप, रसगुणसम्पन्न जल शेष र... है।

आकाश + वायु = वायु.
आकाश + तेज = तेज.
आकाश + जल = जल.
आकाश + पृथिवी = पृथिवी.

अत एव आकाशकी वायु आदिमें अनुगति सिद्ध है; तद्वत्, ०... १ = १, ०+ २ = २, ०+ ३ = ३, ०+ ४ = ४, ०... ५ = ५ आदिके अनुशीलनसे शून्यकी दो, तीन आदिमें अनुगति सिद्ध...

९६. अशून्यं शून्यभावं तु ।।

(तेजोबिन्दूपनिषत् १.१०) /४२

"शून्यभाव वस्तुतः भावरूप अशून्य ही है। अभिप्राय यह है... शून्यको अभाव मानना गणितसिद्धान्तके सर्वथा विरुद्ध है।"

९७.न भावाज्जायते भावः।।

(बौद्धागम)/४३

"भावसे भावकी उत्पत्ति नहीं होती।।"

९८.भावोऽभावान्न जायते।।

(बौद्धागम)/४४

"भाव अभावसे उत्पन्न नहीं होता।"

९९.नाभावाज्जायतेऽभावः।।

(बौद्धागम)/४५

"अभावसे अभाव भी उत्पन्न नहीं होता।।"

१००.अभावो भावान्न जायते।।

(बौद्धागम) /४६

"अभाव भावसे समुत्पन्न नहीं होता।"

१०१. नास्त्यसद्धेतुकमसत् ।।

(माण्डूक्यकारिका ४.४०)/४७

"असत् कारणवाला असत् नहीं हो सकता; यथा, बन्ध्यापुत्रसे खपुष्प समुत्पन्न नहीं होता।। "

१०२.सदसद्धेतुकं तथा।।

(माण्डूक्यकारिका ४.४०)/४८

"तद्वत् असत् कारणवाला सत् नहीं हो सकता।"

अभिप्राय यह है कि एकादिका उद्भवस्थान शून्य अ... असत् नहीं हो सकता, जैसे कि घटादिका कारण आकाशकुसुम... होता।

१०३. सच्च सद्धेतुकं नास्ति।।

(माण्डूक्यकारिका ४.४०)/४९

"तद्वत् सत् सत् कारणवाला नहीं हो सकता।"

जलसे नवनीत समुत्पन्न नहीं होता। स्वोचित सन्निकट नि... ही कार्योत्पत्ति सम्भव है। यथा, तीनसे चारकी, दोसे तीनकी, ... दोकी, तद्वत् शून्यसे एककी समुत्पत्ति सम्भव है।

१०४. सद्धेतुकमसत्कुतः।।

(माण्डूक्यकारिका ४.४०)/५०

"सत् कारणवाला असत् हो ही कैसे सकता है ?"

घटादिसे आकाशकुसुमादिकी समुत्पत्ति सम्भव नहीं।

१०५. सतो हि मायया जन्म युज्यते न तु तत्त्वतः।।

(माण्डूक्यकारिका ३.२७)/५१

"तथापि सत् का मायासे जन्म सम्भव है, न कि वास्तव।"

अभिप्राय यह है कि शून्यसंज्ञक शक्तिमान् की एकसंज्ञक श... योगसे दो आदिकी समुत्पत्ति सम्भव है।

१०६. असतो मायया जन्म तत्त्वतो नैव जायते।।

(माण्डूक्यकारिका ३.३०)/५२

"परन्तु असत् का मायासे अथवा वास्तव जन्म सर्वथा असम्भव है।"

यदि शून्य अभावात्मक असत् ही हो, तब स्वतः अथवा किसीके द्वारसे वह एकादिरूपसे कैसे समुत्पन्न हो ?

१०७. क्षयिष्णवः सातिशया न निर्मलाः।।

(श्रीमद्भागवत ७.७.४०)/५३

" नाशवान् और सातिशय (सविशेष) होनेसे एकादि निर्मल नहीं हैं।"

पूर्वाङ्कमें विलीनता और स्वयंसे स्वयंकी वियुक्तता एकादिकी नश्वरता है। किसी भी अङ्कसे एकका ऋण उसकी पूर्वाङ्करूपता है और किसी भी अङ्कसे उसीका ऋण उसकी शून्यरूपता है। यथा, ३ − १ = २, २ − २ = ०.

१०८. स्वनिमित्तकवृद्धिह्रासत्वादेकादेर्विकारता सातिशयता च।।

"स्वयंके निमित्तसे वृद्धि या ह्रासहित होनेके कारण एकादिकी सातिशयता तथा सविकारता सिद्ध है।"

यथा, १ + १ = २, १ − १ = ०, १ × १ = १, १ ÷ १ = १; २ + २ = ४, २ − २ = ०, २ × २ = ४, २ ÷ २ = १; ३ + ३ = ६, ३ − ३ = ०, ३ × ३ = ९, ३ ÷ ३ = १.जब कि

शून्यमें शून्यनिमित्तक वृद्धि या ह्रास न होनेके कारण शून्य सातिशय
है और सातिशय न होनेके कारण ही सविकार नहीं है।।

१०९. नहि सत्यस्य नानात्वम् ।।

(श्रीमद्भागवत ७.४.३०) /५४

"सत्यका नानात्व सम्भव नहीं।"

शून्यातिरिक्त एकादि अनेक हैं। दो, तीन आदिका मूल एक सि
होनेपर भी एकका एकन्यून पूर्वाङ्क शून्य ही सिद्ध होता है। वही नानात्व
साधक सत्याङ्क है।

सूत्रसङ्ख्या	१०९
सङ्कलित	५४
स्वविरचित	५५

२.परिभाषाध्याय:

१. सर्वं सङ्ख्यानगोचरः।।

(महाभारत - शान्तिपर्व २७९.६) / १

"कर्मफलात्मक कार्यवर्गकी अनन्तता असिद्ध है, सब कुछ सङ्ख्याकी सीमामें निबद्ध है।"

प्रसङ्गानुसार मान, उन्मान और परिमाण भी एक मीटर, दो किलो, दो लीटर आदि रूपोंमें गणेय (गणनायोग्य) या सङ्ख्यात (गणना प्राप्त) होनेसे सङ्ख्या मान्य हैं।

२. सङ्ख्या सङ्ख्येयनिष्ठा ।।

"सङ्ख्या सङ्ख्येयको लेकर प्रवृत्त होती है ।"

३.सङ्ख्यैकद्व्यादिसंज्ञिका ।।

(शुक्रनीति २.३५२)/ २

" एक, दो आदि रूपसे गणना सङ्ख्या है।"

४. अनन्तस्य न सङ्ख्यानम् ।।

(ब्रह्मपुराण २३.२६) / ३

"सङ्ख्यानगोचरोंका परमाधार अनन्तका सङ्ख्यान असम्भव है। यद्यपि वेदान्तवेद्य ब्रह्मतुल्य शून्यको भी 'एक' कहनेकी परिपाटी है; तथापि वह काल, देश तथा वस्तुकी सीमासे अतीत अव्यवहार्य है।।"

५: स्थानात्स्थानं दशगुणमेकस्माद्गण्यते :

(विष्णुपुराण ६.४.४)/४

"एकसे दस, दससे सौ, सौसे हजारके क्रमसे दशगुण अधिक गणनाकी वैदिकविधा है।।"

६.ततोऽष्टादशमे भागे परार्द्धमभिधीयते।।

(विष्णुपुराण ६.४.४)/५

"एकसे अट्ठारहवें स्थानपर परार्द्ध नामक सङ्ख्या है।"

पुराणोंमें इस तथ्यका प्रतिपादन किया गया है कि एकसे लेकर क्रमशः दश गुण गिनते – गिनते जो अट्ठारहवीं वार गिनी जाती है, वह सङ्ख्या परार्द्ध कहलाती है। १. एक, २. दश, ३. शत, ४. सहस्र,५.अयुत, ६.लक्ष, ७.प्रयुत, ८.कोटि, ९. अर्बुद, १०. अब्ज (पद्म), ११. खर्व, १२. निखर्व, १३. महापद्म, १४. शङ्कु, १५.जलधि (समुद्र), १६. अन्त्य, १७.मध्य, १८.परार्द्ध – उत्तरोत्तर दश गुण उत्कृष्ट सङ्ख्या है।

एकं दश शतं चैव सहस्रायुतलक्षकम्।।
प्रयुतं कोटिसंज्ञां चार्बुदमब्जं च खर्वकम्।
निखर्वं च महापद्मं शङ्कुर्जलधिरेव च।।

अन्त्यं मध्यं परार्द्धं च संज्ञा दशगुणोत्तरा।
क्रमादुत्क्रमतो वापि योगः कार्योऽन्तरं तथा।।

(बृहन्नारदीयपुराण २. ५४. १२ – १४)

महाभारतमें परार्द्धके अनन्तर पर सङ्ख्याका उल्लेख है। परार्द्धशब्द परसापेक्ष है ही। –

अयुतं प्रयुतं चैव शङ्कुं पद्मं तथार्बुदम्।
खर्वं शङ्कुं निखर्वं च महापद्मं च कोटयः।।
मध्यं चैव परार्द्धं च सपरं चात्र पण्यताम्।

(महाभारतसभापर्व ६५.३,१/ २)

ब्रह्माजीकी आधी आयुके लिए परार्द्ध शब्दका प्रयोग होता है तथा पूर्णायुके लिए द्विपरार्द्धशब्दका प्रयोग होता है। सर्गकी अवधि द्विपरार्द्ध है और महाप्रलयकी अवधि भी द्विपरार्द्ध है। अभिप्राय यह है कि ब्रह्मलोककी गणनाके अनुसार सौ वर्ष, किन्तु मर्त्यलोककी गणनाके अनुसार ३१ नील, दस खरब, चालीस अरब (३१, १०, ४०,००,००,००,०००)वर्ष महासर्ग, महाप्रलय और ब्रह्माजीकी आयु मान्य है।

तैत्तिरीयोपनिषत् के अनुसार मर्त्यलोकमें सुलभ सर्वाधिक आनन्द मानुषानन्द है। उसकी अपेक्षा उत्तरोत्तर क्रमशः शतगुण अधिक आनन्द मनुष्यगन्धर्व, देवगन्धर्व, पितर, आजानजदेव, कर्मदेव, देव, इन्द्र, बृहस्पति, प्रजापति और ब्रह्माजीको सुलभ है। मानुषानन्दकी अपेक्षा शतगुण अधिक दसवें स्थानपर स्थित ब्रह्माजीको सुलभ आनन्द सहस्र परार्द्धगुण अधिक (१ बीस शून्य) सिद्ध है।

इस प्रकार १ संलग्न बीस शून्य तक वैदिक गणनाकी गति चरितार्थ होती है। दशमलवपद्धतिकी दृष्टिसे १ संलग्न बीस ० तक

गणनाकी गति विशेष महत्त्वपूर्ण है।

सारणीके माध्यमसे उसका चित्रण प्रस्तुत है।-

१० (१ एक शून्य) दशन् (दस)
१०० (१ दो शून्य) शतम् (सौ)
१००० (१ तीन शून्य) सहस्रम् (हजार)
१०००० (१ चार शून्य) अयुतम् (दस हजार)
१००००० (१ पाँच शून्य) लक्षम्/लक्षा (लाख)
१०००००० (१ छह शून्य) प्रयुतम् (दस लाख)
१००००००० (१ सात शून्य) कोटि (करोड़)
१०००००००० (१ आठ शून्य) अर्बुदम् (दस करोड़)
१००००००००० (१ नौ शून्य) अब्जम् (अरब)
१०००००००००० (१ दस शून्य) खर्व: -खर्वम् (दस अरब)
१००००००००००० (१ ग्यारह शून्य) निखर्व: (खरब)
१०००००००००००० (१ बारह शून्य) महापद्मम् (दस खरब)
१००००००००००००० (१ तेरह शून्य) शङ्कु: (नील)
१०००००००००००००० (१ चौदह शून्य) जलधि: (दस नील)
१००००००००००००००० (१ पन्द्रह शून्य) अन्त्य: (पद्म)
१०००००००००००००००० (१ सोलह शून्य) मध्यम् (दस पद्म)
१००००००००००००००००० (१ सत्रह शून्य) परार्द्धम् (शङ्ख)
१०००००००००००००००००० (१ अट्ठारह शून्य) दशपरार्द्धम् (दस शङ्ख)
१००००००००००००००००००० (१ उन्नीस शून्य) शतपरार्द्धम् (सौ शङ्ख)
१०००००००००००००००००००० (१ बीस शून्य) सहस्र परार्द्धम् (हजार शङ्ख)

७.एका च दश च परार्द्धश्च।।

(यजु: काण्वसंहिता १८.२,३)/ ६

''यजुर्वेद – काण्वसंहितामें एकसे परार्द्धपर्यन्तसङ्ख्याका समुल्लेख है।

इमा मे अग्न इष्टका धेनव: सन्त्वेका च दश च शतं च शतं च।
सहस्रं च सहस्रं चायुतं चायुतं च नियुतं च नियुतं च ।।
अर्बुदं च न्यर्बुदं च समुद्रश्च मध्यं चान्तश्च परार्द्धश्च।
अर्बुदं च न्यर्बुदं च समुद्रश्च मध्यं चान्तश्च परार्द्धश्च।
एता मे अग्न इष्टका धेनव: सन्त्वमुत्रामुस्मिँल्लोके ।।

(यजु: काण्वसंहिता १८.२,३)

ऋग्वेदमें १. १५. ६, ३. ३१. ३, ८. १. ३३ आदि स्थलोंमें दशका निरूपण किया गया है; १.२४.९ आदि स्थलोंमें शतम्का निरूपण किया गया है; १.११.८ आदि स्थलोंमें सहस्रम्का उल्लेख किया गया है; ४.२६.७ आदि स्थलोंमें अयुतम्का उल्लेख किया गया है; २.१२.४ आदि स्थलोंमें लक्षम्का उल्लेख किया गया है; ५.३२.२.आदि स्थलोंमें प्रयुतम्का उल्लेख किया गया है ।

तैत्तिरीयसंहिताके ४.४.११.३–४, ७.२.११.१९ आदि स्थलोंमें १, १००, १०००, १०००० और नियुत, प्रयुत, अर्बुद, न्यर्बुद, समुद्र, मध्य, अन्त तथा परार्द्धका समुल्लेख है।'

८.योज्ययोजकसंयोगो योग:।।

''योज्य तथा योजकोंका संयोग योग है।''

१. ० + ९ = ९,
२. १ + ८ = ९,
३. २ + ७ = ९,
४. ३ + ६ = ९,
५. ४ + ५ = ९,
६. ५ + ४ = ९,

७. ६ + ३ = ९,
८. ७ + २ = ९,
९. ८ + १ = ९,
१०. ९ + ० = ९.

१. ० + ८ = ८,
२. १ + ७ = ८,
३. २ + ६ = ८,
४. ३ + ५ = ८,
५. ४ + ४ = ८,
६. ५ + ३ = ८,
७. ६ + २ = ८,
८. ७ + १ = ८,
९. ८ + ० = ८. के अनुशीलनसे यह तथ्य सि

है कि योज्य तथा योजकोंके संयोगसे योगफलकी समुपलब्धि होती है
शून्यको प्रथम योज्य तथा अन्तिम योजक माननेपर योज्य तथा योजक
व्यत्याससे योगफलसे एक अधिक चरणोंमें योगफलकी समुपलब्धि सम
है।

९.विश्लेषणमृणम्।।

" बिलगाव ऋण है।"

१. ७. - ० = ७,
२. ८ - १ = ७,

९ - २ = ७,
३. १० - ३ = ७,
४. ११ - ४ = ७,
५. १२ - ५ = ७,
६. १३ - ६ = ७,
७. १४ - ७ = ७,
८. १५ - ८ = ७
९. १६ - ९ = ७,
१०. १७ - १० = ७.

१. ६ - ० = ६,
२. ७ - १ = ६,
३. ८ - २ = ६,
४. ९ - ३ = ६,
५. १० - ४ = ६,
६. ११ - ५ = ६,
७. १२ - ६ = ६,
८. १३ - ७ = ६ ,
९. १४ - ८ = ६,
१०. १५ - ९ = ६,
११. १६ - १० = ६. के अनुशीलनसे यह तथ्य सिद्ध

है कि ऋण्य तथा ऋणकोंके वियोजन, विश्लेषण , विघटन या व्यवकलनसे शेषकी समुपलब्धि होती है। शून्यको प्रथम ऋणक तथा एक संलग्न शून्यसंज्ञक दसको अन्तिम ऋणक माननेपर , तद्वत् एकसे नौतकके शेषको

ऋण्य एवम् एकसंलग्न अन्तिम ऋण्य माननेपर शून्योत्तर दश
शून्यसहित ग्यारह चरणोंमें शेषकी समुपलब्धि सम्भव है।

१०.गुण्यस्य गुणकसङ्ख्यानुरूपसम्प्रयोगो गुणनम्

"गुण्यका गुणनवार (गुणक सङ्ख्याके अनुरूप) प्रयोग गु
है।"

यथा, २ × ३ = ६ अर्थात् २ + २+ २ = ६. :

११. गुणकानुरूपं गुण्यावृत्तिमेलनं वा गुणनम्

" अथवा गुणकके अनुरूप गुण्यकी आवृत्तिका मेलन गु
है।।"

१.	० × १ = ०.
२.	० × २ = ०.
३.	० × ३ = ०.
४.	० × ४ = ०.
५.	० × ५ = ०.
६.	० × ६ = ०.
७.	० × ७ = ०.
८.	० × ८ = ०.
९.	० × ९ = ०.
१०.	० × १० = ०.

१.	१ × १ = १.
२.	१ × २ = २.
३.	१ × ३ = ३.
४.	१ × ४ = ४.
५.	१ × ५ = ५.
६.	१ × ६ = ६.
७.	१ × ७ = ७.
८.	१ × ८ = ८.
९.	१ × ९ = ९.
१०.	१ × १० = १०.

१.	२ × १ = २.
२.	२ × २ = ४
३.	२ × ३ = ६.
४.	२ × ४ = ८.
५.	२ × ५ = १०.
६.	२ × ६ = १२.
७.	२ × ७ = १४.
८.	२ × ८ = १६.
९.	२ × ९ = १८.
१०.	२ × १० = २०

१.	३ × १ = ३.

२. ३ × २ = ६.
३. ३ × ३ = ९.
४. ३ × ४ = १२.
५. ३ × ५ = १५.
६. ३ × ६ = १८.
७. ३ × ७ = २१.
८. ३ × ८ = २४.
९. ३ × ९ = २७.
१०. ३ × १० = ३०. आदिके अनुशीलनसे यह तथ्य सि[illegible]
है कि गुण्य क्रमशः एकादि तथा गुणक क्रमशः एकसे दसतक होनेपर प[illegible]
स्थानपर गुण्य स्वयम् तथा दसवें
स्थानपर इकाई – स्थानापन्न शून्य तथा दहाई – स्थानापन्न गुण्य एक[illegible]
होता है। यथा, १ × १ = १, १ × १० = १०, २ × १ = २, २
× १० = २०, ३ × १ = ३, ३ × १० = ३० आदि।

१२. भाज्ये भाजकानुगत्यवशेषसमुल्लेखो भाग:।

"भाज्यमें भाजककी अनुगति तथा अवशेषसिद्धिके समुल्लेख[illegible]
भाग कहते हैं।"

■

६) ६ (१
६
—
०

■

५) ६ (१
५
—
१

■

■

४) ६ (१
४
—
२

■

३) ६ (२
६
—
०

■

२) ६ (३
६
—
०

■

१) ६ (६
६
—
०

■

५) ५ (१
५
—
०

■

४) ५ (१
४
—
१

■

३) ५ (१
३
—
२

■

२) ५ (२
४
—
१

■

१) ५ (५
५
—
०

१३.एकेनारभ्य भाज्याङ्कपर्यन्तं भाजकेन भागो विधेय:।।

''एकसे आरम्भकर भाज्याङ्कपर्यन्त भाजकसे भाग चाहिए।''
उपर्युक्त समीकरणके अनुशीलनसे यह तथ्य सिद्ध है।

१४.योगफलाद्योजकविलोपनं योज्यसिद्धि:।।

''योगफलसे योजकका ऋण करनेसे योज्यकी सिद्धि होती है। ।''

१५.योगफलाद्योज्यविलोपनं योजकसिद्धि:।।

''योगफलसे योज्यका ऋण करनेसे योजककी सिद्धि होती है।''

⊖ योज्य + योजक = योगफल.

∴ योगफल − योज्य = योजक.

∴ योगफल − योजक = योज्य.

ʘ ५ + ४ = ९.

∴ ९ − ५ = ४.

९ − ४ = ५.

१६. ऋण्याद् ऋणकर्णेन ऋणफलम् ।।

"ऋण्यसे ऋणकका ऋण ऋणफल है।"

यथा, ५ − ४ = १.

१७. ऋणफलेनर्णकस्य योगर्ण्यम् ।।

"ऋणफलसे ऋणकका योग ऋण्य है।।"

यथा, ʘ ५ − ४ = १.

∴ १ + ४ = ५.

१८. ऋण्यादृणफलस्य विलोपनमृणकम्।।

"ऋण्यसे ऋणफलका ऋण ऋणक है।।"

यथा,

ʘ ऋण्य − ऋणक = ऋणफल (शेष)

∴ ऋणफल + ऋणक = ऋण्य.

∴ ऋण्य − ऋणफल = ऋणक.

ʘ ५ − ४ = १.

∴ १ + ४ = ५.

∴ ५ − १ = ४.

१९. गुणनफले गुणकस्य भागो गुण्यम्।।

"गुणनफलमें गुण्यका भाग गुणक है।"

२०. गुणनफले गुण्यस्य भागो गुणकम्।।

"गुणनफलमें गुणकका भाग गुण्य है।"

(सूत्र १९, २०.)

गुण्य × गुणक = गुणनफल.

गुणनफल ÷ गुण्य = गुणक.

गुणनफल ÷ गुणक = गुण्य.

५ × २ = १०.

१० ÷ ५ = २.

१० ÷ २ = ५.

५ × २ = १०. अर्थात्

५ + ५ = १०. अर्थात्

(१० − ५ = ५) + (१० − ५ = ५)

२१. भाज्यर्णके भाजकेन भागो भागफलम्।।

"भाज्यर्णकके साथ भाजकके द्वारा भाग भागफल होता है।"

यथा, ७ ÷ ३ = २ भागफल, शेष १.

२२. भाजकेन भागफलस्य गुणनं शेषस्य च यो[...] भाज्यम्।।

"भाजकसे भागफलका गुणन तथा शेषका योजन भाज्य है।"

यथा, ७ ÷ ३ = २ भागफल, शेष १.

(३ × २) + १ = ७ भाज्य.

२३. भागफलगुणितं शेषेण सहितञ्च भा[...] भाज्यम्।। २३।।

"भागफलसे गुणितं शेषके सहित भाजक भाज्य होता है।"

२४. भाज्यर्णके भागफलेन भागो भाजकम्।।

"भाज्यर्णकमें भागफलद्वारा भाग करनेपर भाजकोपलब्धि[...] है।।"

यथा, ७ ÷ ३ = २ भागफल, शेष १.

७ ÷ २ = ३ भाजक.

२५. भाजकेन गुणितं भागफलविरहितं च भ[...] शेषम्।।२५।।

"भाजकसे गुणित भागफलविरहित भाज्य शेष होता है।"

यथा, ७ ÷ ३ = २ भागफल, शेष १.

७ − (३ × २) = १ शेष.

२६. भागफलेन गुणितं भाजकं भाज्यर्णकम्

"भागफलसे गुणित भाजक भाज्यका ऋणक होता है।"

(सूत्र २१ से २६)

भाजक भाज्य भागफल

३) ७ (२

६ भाज्यर्णक (भाज्य ऋणक), भाज्यापकर्षक

—

१ शेष

∵ भाज्यर्णक ÷ भाजक = भागफल.

∴ (भाजक × भागफल) + शेष = भाज्य.

∴ भाज्यर्णक ÷ भाजक = भागफल.

∴ भाज्य − (भाजक × भागफल) = शेष.

∴ भाजक × भागफल = भाज्यर्णक.

∵ ७ ÷ ३ = भागफल २. भाज्यर्णक ६, शेष १.

∴ (३ × २) + १ = ७ भाज्य.

∴ ६ ÷ २ = ३ भाजक.

∴ ७ ÷ ३ = २ भागफल.

∴ ७ – (३ × २) = १ शेष.

∴ (३ × २) = ६ भाज्यर्णक.

२७. गुणादिषु पूर्वोत्तराणां सन्निकर्षः ॥

"गुणादिमें पूर्व तथा उत्तरवर्ती योग, ऋण, गुणन और यथायोग्य समावेश होता है॥"

२८. योगभागसमाहारो गुणनम् ॥

"योग और भागका सम्मिलित स्वरूप गुणन है।"

यथा,

९ × ३ = २७.

२७ ÷ ३ = ९.

२७ ÷ ९ = ३.

२९. गुण्यो भाजकः॥

"भागस्थलमें गुण्य भाजक मान्य है ॥"

३०.गुणको भागफलम् ॥

"भागस्थलमें गुणक लब्धि या भागफल मान्य है ॥"

भाजक / गुण्य   गुणक / लब्धि या भागफल

६)   ३३   (५

३०

—

०३

३१. ऋणगुणनसहस्थितिर्भागः॥

"उक्तरीतिसे ऋण तथा गुणनकी सहस्थिति भाग है।"

३२. राशिं गणितम् ॥

(छान्दोग्योपनिषत् – शाङ्करभाष्य ७.१.२)/७

"राशि गणित है॥"

३३.गणो गणितम् ॥

"अर्थात् गण गणित है॥"

३४.शून्यैकस्य समाहारो गणितम् ॥

"शून्य और एकका समाहार गणित है॥"

३५.स्वाधीनं त्वायसंज्ञकम् ॥

(शुक्रनीति २.३२१)/८

" अपने अधिकारमें धनागम अर्थात् पूर्व स्थितसे अधिक प्राप्ति आय कहा गयी है।"

३६.पराधीनं कृतं व्ययसंज्ञम् ।।

(शुक्रनीति २.३२१)/९

"अपने अधिकारसे दूसरेके अधिकारको किया गया धन सम्प्राप्तसे न्यून किया गया धन व्यय कहा गया है।"

३७.अपचयो व्ययः ।।

(कौटिल्य – अर्थशास्त्र १४२. ४. १)/१०

" अपचय व्यय है।"

३८. अङ्गुलाद्यं स्मृतं मानम् ।।

(शुक्रनीति २.३५२)/११

"अङ्गुलि आदिसे जो मापा जाता है, उसे मान कहते हैं।"

३९. उन्मानं तु तुला स्मृता।।

(शुक्रनीति २.३५२)/१२

" तौलकर भार अङ्कनको उन्मान कहते हैं।"

४०.परिमाणं पात्रमानम् ।।४०।।

(शुक्रनीति २.३५२)/१३

"किसी पात्रसे मापना परिमाण कहा जाता है।"

सूत्रसङ्ख्या	४०
सङ्कलित	१३
स्वविरचित	२७

३.अङ्कधराध्यायः

१. अङ्कानामन्तरालरहितसहितक्रमेणाङ्क नप्रकारोऽङ्कधरः।।१।।

"अङ्कोंका अन्तरालरहित तथा सहित क्रमसे अङ्कनका प्रकार अङ्कधर (पहाड़ा) है।।"

२.अत एव द्विविधः ।।

"अतएव अङ्कधर अन्तरालसहित तथा रहित भेदसे दो प्रकार है ।।"

३. एकादीनामेकेन युक्तेन सङ्ख्याक्रमेणा ङ्कधरसिद्धिः।।

"एकादिका एकसे योग होनेपर सङ्ख्याके क्रमसे अङ्कधर (पहा की सिद्धि होती है ।।"

यथा; ० + १ = १, १ + १ = २, २ + १ = ३, ३
१ = ४, ४ + १ = ५, ५ + १ = ६, ६ + १ = ७, ७
१ = ८, ८ + १ = ९, ९ + १ = १०.

तुल्य क्रमका अनुवर्तन अग्रिम चरणोंमें भी कर्त्तव्य है।

४.एकादिक्रमेणैकादेर्गुणकेन गुणनादङ्कधरसिद्धिः।।

"एकादिक्रमसे एकादिके गुणकसे गुणन करनेपर अङ्कधरकी सिद्धि होती है ।।"

१ × १ = १, १ × २ = २.....;
२ × १ = २, २ × २ = ४....,
३ × १ = ३, ३ × २ = ६ ....;
४ × १ = ४, ४ × २ = ८...;
५ × १ = ५, ५ × २ = १०, ५ × ३ = १५, ५ × ४
= २०, ५ × ५ = २५, ५ × ६ = ३०, ५ × ७ = ३५, ५ ×
८ = ४०, ५ × ९ = ४५, ५ × १० = ५०.तुल्य विधाका अनुवर्तन अग्रिम चरणोंमें भी कर्त्तव्य है।

५.क्रमाद्दशचरणेष्वेकादियोगेना-ङ्कधरसिद्धिः।।

"क्रमशः दस चरणोंमें एकादिके योगसे अङ्कधरकी सिद्धि होती है ।।"

यथा; ० + १ = १, १ + १ = २, २ + १ = ३, ३ +
१ = ४, ४ + १ = ५, ५ + १ = ६, ६ + १ = ७, ७ +
१ = ८, ८ + १ = ९, ९ + १ = १०.

० + २, २ + २ = ४, ४ + २ = ६, ६ + २ = ८, ८
+ २ =, १०, १० + २ = १२, १२ + २ = १४, १४ + २
= १६, १६ + २ = १८, १८ + २ = २०.

० + ३, ३ + ३ = ६, ६ + ३ = ९, ९ + ३ = १२, १२

\+ ३ = १५, १५ + ३ = १८, १८ + ३ = २१, २४
= २७, २७ + ३ = ३०.

तुल्य क्रमका अनुवर्तन अग्रिम चरणोंमें भी कर्तव्य है।

यथा;

+१;	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०.
+२;	२	४	६	८	१०	१२	१४	१६	१८	२०.
+३;	३	६	९	१२	१५	१८	२१	२४	२७	३०.
+४;	४	८	१२	१६	२०	२४	२८	३२:	३६	४०.
+५;	५	१०	१५	२०	२५	३०	३५	४०	४५	५०.
+६;	६	१२	१८	२४	३०	३६	४२	४८	५४	६०.
+७;	७	१४	२१	२८	३५	४२	४९	५६	६३	७०.
+८;	८	१६	२४	३२	४०	४८	५६	६४	७२	८०.
+९;	९	१८	२७	३६	४५	५४	६३	७२	८१	९०.
+१०;	१०	२०	३०	४०	५०	६०	७०	८०.	९०.	१००.

६. तस्मात्प्रथमस्योभयता।।

“ अत एव प्रथमवर्गान्तर्गत एकके अङ्कधरकी उभयता सिद्ध है। अभिप्राय यह है कि एकके योज्य तथा एकसे दसपर्यन्त योजक, तद्वत् एकके गुण्य तथा एकसे दसपर्यन्त गुणक मानने पर समान योगफल और गुणनफलकी प्राप्ति होती है। एकका अङ्कधर अन्तरालरहित ही सिद्ध है; जब कि दो आदिके अङ्कधरमें २, ४, ६, ८, १०, १२, १४, १६, १८, २० आदिके अनुशीलनसे ३, ५, ७, ९, ११, १३, १५, १७, १९ आदिका अन्तराल सिद्ध है। उत्तरोत्तर एकाधिक क्रमसे अङ्कक्रम निर्धारणकी दृष्टिसे और एकके अङ्कधरमें वर्गान्त दसतक एकादिक्रमसे गुणन करनेपर

अन्तरालरहित अङ्कोंकी प्राप्ति होती है। अतः एकके अङ्कधरमें एकादि क्रमसे योग और गुणन दोनों चरितार्थ है।।”

१+ ०= १	१ × १ = १
१+ १= २	१ × २ = २
१+ २= ३	१ × ३ = ३
१+ ३= ४	१ × ४ = ४
१+ ४= ५	१ × ५ = ५
१+ ५= ६	१ × ६ = ६
१+ ६= ७	१ × ७ = ७
१+ ७= ८	१ × ८ = ८
१+ ८= ९	१ × ९ = ९
१+ ९=१०	१ × १०=१०

१	११	२१	३१	४१	५१	६१	७१	८१	९१
२	१२	२२	३२	४२	५२	६२	७२	७२	९२
३	१३	२३	३३	४३	५३	६३	७३	८३	९३
४	१४	२४	३४	४४	५४	६४	७४	८४	९४
५	१५	२५	३५	४५	५५	६५	७५	८५	९५
६	१६	२६	३६	४६	५६	६६	७६	८६	९६
७	१७	२७	३७	४७	५७	६७	७७	८७	९७
८	१८	२८	३८	४८	५८	६८	७८	८८	९८
९	१९	२९	३९	४९	५९	६९	७९	८९	९९
१०	२०	३०	४०	५०	६०	७०	८०	९०	१००

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०.
२	४	६	८	१०	१२	१४	१६	१८	२०.
३	६	९	१२	१५	१८	२१	२४	२७	३०.
४	८	१२	१६	२०	२४	२८	३२	३६	४०.
५	१०	१५	२०	२५	३०	३५	४०	४५	५०.
६	१२	१८	२४	३०	३६	४२	४८	५४	६०.
७	१४	२१	२८	३५	४२	४९	५६	६३	७०.
८	१६	२४	३२	४०	४८	५६	६४	७२	८०.
९	१८	२७	३६	४५	५४	६३	७२	८१	९०.
१०	२०	३०	४०	५०	६०	७०	८०	९०	१००.

७.आतानवितानघटितान्तरालसहिताङ्कध वृद्धिङ्गतसमशीलता ।।

"आतानवितानघटितान्तरालसहित अङ्कधरमें वृद्धिको ले समशीलता है।।"

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
२	४	६	८	१०	१२	१४	१६	१८	२०
३	६	९	१२	१५	१८	२१	२४	२७	३०
४	८	१२	१६	२०	२४	२८	३२	३६	४०
५	१०	१५	२०	२५	३०	३५	४०	४५	५०
६	१२	१८	२४	३०	३६	४२	४८	५४	६०
७	१४	२१	२८	३५	४२	४९	५६	६३	७०
८	१६	२४	३२	४०	४८	५६	६४	७२	८०

९	१८	२७	३६	४५	५४	६३	७२	८१	९०
१०	२०	३०	४०	५०	६०	७०	८०	९०	१००

८.आतानवितानघटितान्तरालरहिताङ्कधरे दशानामाताने विताने चैकस्य वृद्धिशालिता नवानामन्तरालता च।।

"आतानवितानघटित अन्तरालरहित अङ्कधरमें आतानमें दसकी तथा वितानमें एककी वृद्धि और नौका अन्तराल सिद्ध है।।"

१	११	२१	३१	४१	५१	६१	७१	८१	९१
२	१२	२२	३२	४२	५२	६२	७२	८२	९२
३	१३	२३	३३	४३	५३	६३	७३	८३	९३
४	१४	२४	३४	४४	५४	६४	७४	८४	९४
५	१५	२५	३५	४५	५५	६५	७५	८५	९५
६	१६	२६	३६	४६	५६	६६	७६	८६	९६
७	१७	२७	३७	४७	५७	६७	७७	८७	९७
८	१८	२८	३८	४८	५८	६८	७८	८८	९८
९	१९	२९	३९	४९	५९	६९	७९	८९	९९
१०	२०	३०	४०	५०	६०	७०	८०	९०	१००

१ + १० = ११;
२ + १० = १२; आदि स्थलोंमें दसकी वृद्धि है।
१ + १ = २;

११ + १० = ११; आदि स्थलोंमें एकको वृद्धि है।
१ और ११ में २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १० नामक ... अङ्कोंका अन्तराल है।

तुल्य तथ्यका अनुशीलन अन्य स्थलोंमें भी कर्त्तव्य है।

९.द्व्याद्यङ्कधरस्थलैकादिक्रमेणान्तरालता।।

"दो आदिके अङ्कधरस्थलमें एकादिक्रमसे अन्तरालता सिद्ध है। यथा; दोके अङ्कधरमें पूर्वापर अङ्कके मध्यमें एकका, तीनके अङ्कधरमें मध्यवर्ती दो अङ्कोंका और चारके अङ्कधरमें मध्यवर्ती तीन अङ्कोंका अन्तराल सिद्ध है।।"

१०.तस्मादभिमताङ्कधरादेकन्यूनान्त- रालता।।

" अत एव जिसका अङ्कधर बनाना अभिमत हो, उससे एक अङ्क न्यूनकी अन्तरालता मान्य है। उदाहरणार्थ १० का अङ्कधर बनाना है। १० तथा २० के मध्यवर्ती ११, १२, १३, १४, १५, १६, १७, १८, १९ नामक कुल नौ अङ्कोंका अन्तराल प्राप्त है। तुल्य तथ्यका अनुशीलन अन्य स्थलोंमें भी कर्त्तव्य है।।"

११. क्रमाद्दशचरणेष्वेकादेः गुणनेना-ङ्कधरसिद्धिः।।

"क्रमशः दस चरणोंमें एकादिके गुणनसे अङ्कधर (पहाड़ा) की सिद्धि होती है ।।"

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १०.
×१; १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १०.

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १०.
×२; २ ४ ६ ८ १० १२ १४ १६ १८ २०.

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १०.
×३; ३ ६ ९ १२ १५ १८ २१ २४ २७ ३०.

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १०.
×४; ४ ८ १२ १६ २० २४ २८ ३२ ३६ ४०.

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १०.
×५; ५ १० १५ २० २५ ३० ३५ ४० ४५ ५०.

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १०.
×६; ६ १२ १८ २४ ३० ३६ ४२ ४८ ५४ ६०.

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १०.
×७; ७ १४ २१ २८ ३५ ४२ ४९ ५६ ६३ ७०.

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १०

×८;

८ १६ २४ ३२ ४० ४८ ५६ ६४ ७२ ८०

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १०

×९;

९ १८ २७ ३६ ४५ ५४ ६३ ७२ ८१ ९०

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १०

×१०;

१० २० ३० ४० ५० ६० ७० ८० ९० १००

१२.क्रमाद्दशपर्यन्तेन गुणितेनाङ्कधरसिद्धिः ।।

''अभिप्राय यह है कि एक, दो, तीन आदि अङ्कोंमें जिसका अङ्कधर बनाना हो, उससे क्रमशः एकसे दसतकके गुणनसे अङ्कधरकी सिद्धि होती है।''

१३.प्रकृतमेकेन युञ्जीयात् ।।

''प्राप्त एकसे प्राप्तको जोड़े। ''

अभिप्राय यह है कि

(१) एकाधिकसे उत्तराङ्कको प्राप्त करता चले।

(२)एकसे दसतकके अङ्कोंसे विनिर्मित एकके वर्गको प्राप्त एकके वर्गके क्रमिक एकादिको जोड़कर सान्तराल ग्यारहसे बीसका द्वितीय वर्ग प्राप्त करे। तद्वत् प्राप्त सान्तराल दोसे बीसतकके द्वितीय वर्गको एकके वर्गके क्रमिक एकादिसे जोड़कर सान्तराल तीनसे तीसतक तृतीय वर्ग प्राप्त करे। इस प्रकार, प्रथम वर्गके क्रमिक एकादिके योगसे प्राप्त वर्गको सान्तराल उत्तरवर्ती वर्ग बनाता चले।

१ + १ = २; २ + १ = ३;.....

२ + २ = ४; ४ + २ = ६;......

३ + ३ = ६; ६ + ३ = ९; .....

(३)जिस सङ्ख्याका अङ्कधर (पहाड़ा)बनाना हो, उसके दहाई आदि क्रमसे अन्तिम अङ्कको एकाधिक कर धन - ऋणाङ्कमें इकाई आदिके स्थानपर शून्यसंलग्न धनाङ्कको प्राप्त कर , उसे पृथक् से अङ्कित करे।

यथा;

दहाई - रहित १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९ को दहाई - स्थानापन्न शून्यसे संलग्न करे। ०१, ०२, ०३, ०४, ०५, ०६, ०७, ०८, ०९ में दहाई - स्थानापन्न शून्यको एकाधिक अर्थात् एक करे। तद्वत् १० में दहाई - स्थानापन्न १ को एकाधिक अर्थात् २ करे। तद्वत् ९९ में दहाई - स्थानापन्न ९ को एकाधिक अर्थात् १०० करे। तद्वत् ६७८ में सैकड़ा - स्थानापन्न ६ को एकाधिक अर्थात् ७ करे।

१	०१	११
२	०२	१२
३	०३	१३
४	०४	१४

५	०५	१५
६	०६	१६
७	०७	१७
८	०८	१८
९	०९	१९
१०	२०	
९९	१००	
६७८	७७८	:

तदनन्तर दहाई, सैकड़ा आदि – स्थानापन्न अङ्कको धनाङ्क और अतिरिक्त इकाई आदिके स्थानापन्न शून्य या शून्योंको सम्भावित ऋणाङ्कके स्थानापन्न धनाङ्क समझे। तदनन्तर जिस सङ्ख्याका अङ्कधर (पहाड़ा) बनाना हो, उसके एकाधिक चरमाङ्कके अतिरिक्त इकाई – स्थानापन्न अङ्कका मित्राङ्क १०को मानकर उसे १० से ऋणकर शेष अङ्कको इकाई – स्थानापन्न शून्यके स्थानपर ऋणाङ्क करे। तत्पश्चात् तदनन्तर जिस सङ्ख्याका अङ्कधर (पहाड़ा) बनाना हो, उसके एकाधिक चरमाङ्कके अतिरिक्त अवशिष्ट दहाई आदि – स्थानापन्न अङ्कोंका मित्राङ्क ९ को मानकर दहाई, सैकड़ा आदि – स्थानापन्न अङ्कको क्रमश: ९ से ऋणकर शेषको दहाई, सैकड़ा आदि – स्थानापन्न शून्यके स्थानपर ऋणाङ्क करे। दहाई, सैकड़ा आदि – स्थानापन्न धनसङ्ख्यासे ऋणसङ्ख्याके ऋणफलको अभिमत अङ्कधरका आधाराङ्करूप प्रथम चरण समझे।

जिन दो अङ्कोंका योग १० होता है, वे १० तथा ०; ९ और १; ८ एवम् २ ; ७ तथा ३; ६ और ४; ५एवम् ५ परस्पर मित्राङ्क होते हैं। तद्वत् जिन दो अङ्कोंका योग ९ होता है, वे ९ तथा ०; ८ और १; ७ एवम् २; ६ तथा ३; ५ और ४;परस्पर मित्राङ्क होते हैं।

(१) $\frac{१०}{०१}, \frac{\bar{१}९}{०१} = १० - ९ = ०१.$:

(२) $\frac{१०}{०९}, \frac{\bar{१}१}{०९} = १० - १ = ०९.$

(३) $\frac{१००}{९९}, \frac{\overline{१०}१}{९९} += १०० - १ = ९९.$

(४) $\frac{७००}{६७८}, \frac{७\overline{२२}}{६७८} = ७०० - २२ = ६७८.$

१४. दशादीनां वर्गान्तता ।।

१ का वर्गान्त १० है ।
२ का वर्गान्त २० है ।
३ का वर्गान्त ३० है ।
४ का वर्गान्त ४० है ।
५ का वर्गान्त ५० है ।
६ का वर्गान्त ६० है ।

७ का वर्गान्त ७० है ।

८ का वर्गान्त ८० है ।

९ का वर्गान्त ९० है ।

१० का वर्गान्त १०० है ।

" अन्तरालरहित वर्गक्रममें दशादिकी वर्गान्तता मान्य है। एकसे दसतकके वर्गमें दसकी, ग्यारहसे बीसतकके वर्गमें बीसकी, इक्कीससे तीसतकके वर्गमें तीसकी; तद्वत् तुल्य क्रमसे अग्रिम चरणोंमें भी चालीस, पचास, साठ आदिकी वर्गान्तता सिद्ध है।।"

१५.एकस्य नवभि:।।

"एककी नौसे मित्रता है। एक तथा नौका योगफल दस होता है।"

१६.द्वयोरष्टाभि:।।

"दोकी आठसे मित्रता है। दोनोंका योगफल दस होता है।"

१७.त्रयाणां सप्तभि:।।

"तीनकी सातसे मित्रता है। दोनोंका योगफल दस होता है।"

१८.चतुर्णां षड्भि:।।

"चारकी छहसे मित्रता है। दोनोंका योगफल दस होता है।।"

१९.पञ्चानां पञ्चभि:।।

"पाँचकी पाँचसे अर्थात् स्वयंसे मित्रता है। दोनोंका योगफल दस होता है।।"

२०.शून्यस्य दशभि:।।

"दस तथा शून्यका योगफल दस होता है, अतः शून्यकी दससे मित्रता मान्य है।।"

२१. अवशिष्टानां पूर्ववन्मित्राङ्कता।।

"अतिरिक्त नौ आदि अङ्कोंकी पूर्ववत् मित्रता है।।"

२२.दशपर्यन्तमङ्केषु पञ्चानां मध्याङ्कता।।

"एकसे दसतकके अङ्कोंमें पाँच मध्याङ्क है। अभिप्राय यह है कि दसको दोसे भाग देनेपर पाँच प्राप्त होता है ।।"

२३. दशानां सुमेरुता ।।

"दशकी सुमेरुसदृशता मान्य है।।"

२४.प्रथमान्तिमक्रमेण मित्राङ्कता।।

"प्रथम तथा अन्तिमके क्रमसे उनमें मित्राङ्कता है। अभिप्राय यह है कि दसको सुमेरुसदृश मानकर अवरोहक्रमसे ९, ८, ७, ६, ५, ४, ३,

२, १ में प्रथम तथा अन्तिमके क्रमसे परस्पर मित्राङ्कता सिद्ध है।

	१०	
९		१
८		२
७		३
६		४
५		५

२५. युगलेन दशाङ्कता।।

"मित्राङ्कोंके योगसे दस नामक अङ्ककी सिद्धि होती है।"

२६.वर्गान्तैकाधिकता ।।

"१से १०, ११से २०, २१से ३०आदि क्रमसे वर्गान्त दशाङ्क अन्तिमाङ्ककी भी एकाधिकता मान्य है; अर्थात् अग्रिम वर्गान्तता सिद्ध है।।"

२७.अर्थाद्वर्गान्तस्य धनाङ्कता ।।

अभिप्राय यह है कि वर्गके अन्तिम सङ्ख्याकी धनाङ्कता सिद्ध है।।"

$$\frac{२०}{१९}=\frac{२\bar{१}}{१९}, २०-१=१९$$

$$\frac{९०}{८१}=\frac{९\bar{९}}{८१}, ९०-९=८१$$

२८.ऋणकशेषयोर्मित्रता ।।

"ऋणक और शेषमें मित्राङ्कता है।"

२९. उभयस्य योजनेन मित्राङ्कस्थले दशाङ्कता ।।

"मित्राङ्कस्थलमें ऋणक और शेषके योगसे ऋण्य दस होता है।।" यथा; १० – ४ = ६ में १० ऋण्य, ४ ऋणक, ६ शेष है। ४ ऋणक तथा ६ शेषका योग १० होता है।

३०.सर्वत्र दशानामृण्यरूपता।।

"मित्राङ्कनिर्धारणकी दृष्टिसे वर्गान्त दसकी सर्वत्र ऋण्यरूपता है।।"

३१. एकादिनवपर्यन्तानां दशस्थले शून्यता।।

"एकका अङ्कधर बनाते समय एकसे नौतकके अङ्कोंके दहाई – स्थानापन्न शून्यको अङ्कित करना चाहिए।

३२.चरमस्य नैकाधिकता।।

"वर्गान्त दशादिके मित्राङ्कको सिद्धिमें एकाधिकता अपान...

३३.तस्माद्वर्गान्तस्य धनाङ्कता।।

"अतएव वर्गान्तकी धनाङ्कता सिद्ध है।।"

३४.ऋणाङ्के एकादिस्थानापन्नशून्यस्य शून्यता।।

" आधाराङ्कके इकाई अदि स्थानापन्न शून्यका ऋणाङ्क... होता है।"

सूत्र ३२ से ३४

(१) $\frac{२०}{१०}, \frac{२\overline{१}०}{१०} = २० - १० = १०.$

(२) $\frac{३००}{२००}, \frac{३००}{१० \times १० \times २} = \frac{३\overline{१००}}{२००} = ३०० - १०० = २००.$

(३) $\frac{४०००}{३०००}, \frac{४०००}{१० \times १० \times १० \times ३} = \frac{४\overline{१०००}}{३०००} = ४००० - १००० = ३०००.$

यद्यपि उक्त रीतिसे उत्तर वर्गान्तको पूर्व वर्गान्तके मित्राङ्कका साधक पूर्वोक्त

एकाधिक-नियमके आधार पर माना जा सकता है; तथापि दहाई, सैकड़ा आदिके स्थानापन्न धनाङ्क सैकड़ा, हजार आदि स्थानापन्न हो जाता है। अतः आधाराङ्क यदि १०,२० आदि वर्गान्त हो, तब उसीको धन-ऋणाङ्कका स्थानापन्न मानना चाहिये। यथा,

$\frac{१०}{१०}; \frac{१\bar{०}}{१०} = १० - ० = १०.$

$\frac{१००}{१००}; \frac{१\bar{०}\bar{०}}{१००} = १०० - ० = १००.$

$\frac{२०००}{२०००}; \frac{२\bar{०}\bar{०}\bar{०}}{२०००} = २००० - ० = २०००.$

३५.सम्मुखस्य दशाधिकता।।

"एकसे दस, ग्यारहसे बीस, इक्कीससे तीस आदि वर्गोंमें १ और ११, ११ और २१, २ तथा १२, १२ तथा २२ आदि सम्मुख सङ्ख्यामें दसकी अधिकता है।

३६.प्रथमपादस्याधाराङ्कता ।।

"१से १० में १; ११ से २०में ११ प्रथम पाद है। तद्वत् अग्रिम वर्गोंमें भी अङ्कधरके प्रथम चरणकी आधाराङ्कसंज्ञा है ।।"

३७.दशसाधकयोज्ययोजकयोर्मित्राङ्कता ।।

"प्रथम वर्गान्त १०के साधक योज्य तथा योजकमें मित्राङ्कता है। अभिप्राय यह है कि जिस योज्य तथा योजकके योगसे प्रथम वर्गान्त

१०की सिद्धि सम्भव है, उनकी परस्पर मित्राङ्क संज्ञा है। यथा, दसतक प्रथम वर्गमें १० तथा ०, ९ और १, ८ और २, ७ और ४, ५ और ५ परस्पर मित्राङ्क हैं। "

अङ्कधरके धन तथा ऋणाङ्ककी सिद्धिमें १०, २०, ३० स्थलोंमें इकाई – स्थानापन्न शून्यरूप दसके स्थानापन्न १० के मित्र उपयोग होता है और १००, २०००, ३००००आदि स्थलोंमें आदि – स्थानापन्न शून्यरूप नब्बेके स्थानापन्न ९ के मित्राङ्कका होता है। यथा;

१० ० १०
९ १
८ २
७ ३
६ ४
५ ५

०.९

९ ०
८ १
७ २
६ ३
५ ४

$\frac{१०}{०९}, \frac{\overline{११}}{०९} = \frac{१०-१}{०९} = ९$

$\frac{५००००}{४१२५६}, \frac{\overline{५८७४४}}{४१२५६} = ४१२५६$

४१२५६ आधाराङ्क है। धनाङ्क ५०००० है। ५०००० में इकाई – स्थानापन्न ० से ६ का ऋण सम्भव नहीं, दहाई – सैकड़ा और हजार – स्थानापन्न ० से भी उसे कुछ मिल पाना सम्भव नहीं; दस हजार – स्थानापन्न ५ से १ सुलभ होनेपर हजार – स्थानापन्न ० का मान ९ हजारतुल्य ९, सैकड़ा –हजार – स्थानापन्न ० का मान ९ हजारतुल्य ९, सैकड़ा – स्थानापन्न ० का मान ९ सौतुल्य ९, तथा दहाई – स्थानापन्न ० का मान ९०तुल्य ९ और इकाई – स्थानापन्न ० का मान १० मान्य है। इनसे १२५६का ऋण ८७४४ होता है। इस तरह ५००००धनाङ्क और ८७४४ ऋणाङ्क होता है। धनाङ्क ५००००से ऋणक ८७४४ का ऋण करनेपर अभिमत अङ्कधरका प्रथम चरणरूप आधाराङ्क ४१२५६ सुलभ होता है।

$\frac{१०९}{९१}$; १००–९= ९१

९१के अङ्कधरमें १०० धनाङ्क , ०९ ऋणाङ्क है। कारण यह है कि ९१ में दहाई – स्थानापन्न ९ के स्थानपर १० और इकाई – स्थानापन्न ० करनेपर १०० धनाङ्क होता है। १०० – ९१ = ०९ ऋणाङ्क होता है ! ९१ में इकाई – स्थानापन्न १का मित्राङ्क ९ है; १ और ९ का योगफल १० होता है। दहाई – स्थानापन्न ९ का मित्राङ्क ० है; ९

और ० का योगफल ९ होता है। इस तरह, १०० - ९१ = ०[illegible]
मित्राङ्क संज्ञा है।

३८. एकादिनवपर्यन्तानां दशस्थले शून्यता।।

"एकका अङ्कधर बनाते समय एकसे नौतकके अङ्कोंके दहाई[illegible] स्थानापन्न शून्यको अङ्कित करना चाहिए।

३९. शून्यान्नवपर्यन्तमेकस्थानीयम् ।।

" केवल शून्यसे नौतकके अङ्क इकाई - स्थानापन्न मान्य हैं।।"

४०.दशस्थानापन्नैकस्य धनाङ्कता[illegible] शून्यस्थानापन्नमित्राङ्कस्य च ऋणाङ्कता ।।

"एकका अङ्कधर बनाते समय वर्गान्त दसको धन - ऋणा[illegible] मानना चाहिए। उसे अङ्कधरके प्रथम चरणरूप अङ्काधारके शिरोभा[illegible] रेखाङ्कित करना चाहिए। दहाई - स्थानापन्न एकको धनाङ्क तथा ऋ[illegible] मानना चाहिए । इकाई - स्थानापन्न शून्यको ऋणाङ्कके लिए सुर[illegible] मानना चाहिए।।"

यथा; $\frac{१०}{१} = \frac{१\bar{९}}{१}$, १० - ९ = १

आधाराङ्क	०१
वर्गान्त धन - ऋणाङ्क	१०

धनाङ्क दहाई - स्थानापन्न	१
ऋणाङ्क आधाराङ्क १ का मित्राङ्क	९
धन - ऋणाङ्क	$१\bar{९}$
समीकरण	$१\bar{९}$ = १० - ९
= आधाराङ्क ०१	

४१.एकस्थले मित्राङ्केन सम्प्रसारणम्।।

" इकाईके स्थानपर आधाराङ्कके मित्राङ्कको सन्निहित करना चाहिए । यथा; दशगत इकाईके स्थानपर आधाराङ्कके ०१ का मित्राङ्क ९ को सन्निहित करना चाहिए ।।"

४२. मित्राङ्कमृणाङ्केन चिह्नितम्।।

"मित्राङ्कको ऋणाङ्कसे चिह्नित करे।।"

$\frac{१\bar{९}}{०१}$ = १० - ९ = ०१

४३.धनादृणितस्याधाराङ्कता।।

"धनाङ्कसे ऋणितकी आधाराङ्कता मान्य है।।"

यथा; $१\bar{९} = १० - ९$

$= ०१$

४४.वर्गान्तातिरिक्तदशादिचरमस्थलै-काधिकता।

''वर्गान्त सङ्ख्याके अतिरिक्तस्थलमें आधाराङ्कगत दहाई, सैकड़ा
हजार आदि अन्तिम- स्थानापन्न ० के स्थानपर १, १के स्थानपर
२ के स्थानपर ३, ३ के स्थानपर ४, ४ के स्थानपर ५, ५ के स्थान
६, ६ के स्थानपर ७, ७ के स्थानपर ८, ८ के स्थानपर ९, ९
स्थानपर १० अर्थात् एक अधिक करनेपर धनाङ्ककी सिद्धि सम्भव है
०१ में ० के स्थानपर १ और ९१ में ९ के स्थानपर १० अपेक्षि
है।।''

$\frac{२०}{१९} = \frac{२\bar{१}}{१९}, २० - १ = १९$

$\frac{९०}{८१} = \frac{९\bar{९}}{८१}, ९० - ९ = ८१$

$\frac{१००}{९१} = \frac{१०\bar{९}}{९१}, १०० - ९ = ८१$

४५.अर्थाद्वर्गान्तस्य धनाङ्कता ।।

''अभिप्राय यह है कि वर्गकी अन्तिम सङ्ख्याकी धनाङ्कता सिद्ध है।।''

४६.कुर्यादेकाधिकं चरमम् ।।

'' १ को ०१ तथा ०१ के दहाई – स्थानापन्न ० को १, तद्वत् २ को ०२ तथा ०२ के दहाई – स्थानापन्न ० को १ क्रमसे ९ को ०९ करे एवम् ०९ के दहाई – स्थानापन्न ० को भी १ करे। तद्वत् ९९ के दहाई – स्थानापन्न ९ को १० करे । तद्वत् ९८७ के सैकड़ा-स्थानापन्न ९ को १० करे ।

४७.अवशिष्टं शून्येन पूरयेत् ।।

''जिसका अङ्कधर अभिमत हो, उसके अन्तिमाङ्कके अतिरिक्त अङ्कोंके स्थानपर उतने ही शून्यको सन्निहित करे।। ''

तात्पर्य यह है कि धन तथा ऋणाङ्ककी सिद्धिके लिए अङ्कधर बनानेके लिए अभिमत सङ्ख्याको उसके वर्गान्तके रूपमें परिणत करे।''

यथा;

८ ९ ७ ६ ५ ४ ३ २ १ / ९ ० ० ० ० ० ० ० ०.

४८.एकाधिकेन चरमेण धनाङ्कतासिद्धिः।।

''उक्त रीतिसे एक अधिक अन्तिमसे धनाङ्ककी समुपलब्धि सम्भव है ।। ''

अभिप्राय यह है कि वर्गान्तके रूपमें परिणत सङ्ख्यामें अन्तिम... धनाङ्क समझे।

यथा;

८ ९ ७ ६ ५ ४ ३ २ १ / ९ ०, ० ०, ०० , ० ०, ...

नब्बे करोड़के स्थानापन्न ९ को धनाङ्क समझना चाहिए।

४९. ऋणकतासिद्धिश्चरमातिरिक्तेन ।।

"चरमातिरिक्तोंको अर्थात् शून्यस्थानापन्न मित्राङ्कोंको ऋणक समझना चाहिए।।"

५०. एकादिस्थानीयशून्यस्य स्वस्यैव मित्राङ्कता ।।

वर्गान्त आधाराङ्कगत शून्योंका शून्य ही मित्राङ्क मान्य है।"

यथा; १०० वर्गान्त है । उसका अङ्कधर बनाना हो, तब ... आधाराङ्क मानना आवश्यक है । ऐसी स्थितिमें १००में इकाई और दहाई ... स्थानापन्न शून्यका मित्राङ्क शून्य ही अभिमत है ।

५१. दशादिस्थानीयानां शून्यानां नवाङ्करीत्या मित्राङ्कता ।।

" दहाई आदि स्थानापन्न शून्योंकी नवाङ्करीतिसे मित्राङ्कता निर्धारित हो ।।"

(१) $\frac{३००}{२०१} = \frac{३\overline{९९}}{२०१} = ३०० - ९९ = २०१$

(२) $\frac{४०००}{३००५} = \frac{४\overline{९९५}}{३००५} = ४००० - ९९५ = ३००५$

५३. एकादिस्थानीयशून्योत्तरैकादीनां वर्गान्तता ।।

"इकाई आदिके स्थानापन्न शून्यके उत्तरवर्ती एकादिकी 'वर्गान्त' संज्ञा है।।" यथा; १०, २०, ३०, १००, २००, १०००, २०००, ३००० आदि। १ से १० तकके अङ्कोंमें १० की; ११ से २० तकके अङ्कोंमें २० की; २१से ३० तकके अङ्कोंमें ३० की; ९१से १०० तकके अङ्कोंमें १०० की 'वर्गान्त' संज्ञा है।

५४. वर्गान्तसन्निहितैकादिस्थानीय- मित्राङ्कमानानां योजनादृणाङ्कसिद्धिः ।।

"वर्गान्तमें सन्निहित इकाई आदि स्थानापन्न मित्राङ्कके मानोंके योगसे ऋणाङ्ककी सिद्धि सम्भव है।।" यथा;

२००. ३ ० ०

↓ ↓ ↓

३ ९ १०

↓ ↓ ↓

३ ९० + १०

↓ ↓

३०० - १००

↓

२००

अथवा

२०० / २०० ; २०̄०̄ / २०० = २०० − ०० = २००

२०००. ३ ० ० ०

३ ९ ९ १०

३ (९०० + ९० + १०)

३००० − (९९० + १०)

३००० − १०००

२०००

अथवा

२००० / २००० ; २०̄०̄०̄ / २००० = २००० − ००० = २०००

५५. वर्गान्तसन्निहितशून्यानुपातेन दशभिर्गुणनेन ऋणाङ्कसिद्धिः ।।"

"अथवा वर्गान्तमें सन्निहित शून्यके अनुपातसे दसके परस्पर गुणनसे ऋणाङ्ककी सिद्धि सम्भव है।।

यथा;

१००

२ ० ०

२०० − (१० × १०)

२०० − १०० = १००.

७००= ८०० − (१० × १०)

= ८००− १०० = ७००

५६.पूर्वस्मात्सङ्कलनव्यवकलनेन व्यवकलन-सङ्कलनाभ्यामुत्तरसिद्धिः ।।

"पूर्व चरणसे धन – ऋणाङ्कके द्वारा ऋण और योगसे उत्तर चरणकी प्राप्ति होती है।।"

अभिप्राय यह है कि जिस सङ्ख्याका अङ्कधर अभिमत है, उसके ऋणाङ्कस्थानीय इकाई–स्थानापन्न मित्राङ्कका इकाई–स्थानापन्न अङ्कसे ऋण करनेपर अग्रिम चरणका इकाई–स्थानापन्न अङ्क प्राप्त होता है । पूर्वचरणगत दहाई आदि स्थानापन्न सङ्ख्यासे प्रथम चरणके मित्राङ्कका योग करने पर अग्रिम चरणके दहाई आदि स्थानापन्न अङ्कोंकी प्राप्ति होती है । सर्वत्र प्रथम

चरणका मित्राङ्क ही ऋणक तथा योजक मान्य है ।

५७.ऋणाङ्कस्य व्यवकलनेन धनाङ्क... योजनेनोत्तरचरणता ।।

"ऋणाङ्कके ऋण और धनाङ्कके योगसे उत्तर चरणकी ... होती है।।"

यथा; सूत्र ५६, ५७

२७

२७ के अङ्कधरका क्रमशः उत्तर चरण इस प्रकार है । २७, ५...
८१, १०८, १३५, १६२, १८९, २१६, २४३, २७० ।

२७ / ३०, ३० = ३$\overline{३}$

२७. (३० - ३ = २७)

५४. (७ - ३ = ४, २ + ३ = ५)

२७ गत ७ (सात) के मित्राङ्क ३ के ऋणसे सम्प्राप्त ४ सत्ताईसके उत्तरचरणका इकाई स्थानापन्न अङ्क है । २७ गत २+इकाईस्थानापन्न ७के मित्राङ्क ३के योगसे निष्पन्न ५ सत्ताईसके उत्तरचरणका दहाई-स्थानापन्न अङ्क है । इस प्रकार ; २७ का उत्तरचरण ५४ है । तुल्यविधाका अनुगमन ... उत्तरचरणोंमें भी कर्तव्य है ।

८१. (४ - ३ = १, ५ + ३ = ८)

१०८. (११-३ = ८, ७+३ = १०)

१३५. (८ - ३ = ५), (१० + ३ = १३)

१६२. (५- ३= २), (१३ + ३ = १६)

१८९. (१२-३= ९), (१५ + ३ =१८)

२१६. (९- ३= ६), (१८ + ३ = २१)

२४३. (६- ३=३), (२१+ ३= २४)

२७०. (३- ३= ०), (२४ + ३ = २७)

२९७के अङ्कधरका उत्तरचरण ५९४, ८९१, ११८८ आदि क्रमसे है ।

२९७ / ३०० ; ३०$\overline{३}$

२९७ ; ७-३= ४, ९ - ० = ९, २+३= ५.

५९४ ; ४-३= १, ९ - ० = ९, ५+३= ८.

८९१ ; १-३= ...

११८८; ११-३= ८, ८-०= ८, ८+३= ११.

तुल्यविधाका अनुगमन अग्रिम चरणोंमें भी कर्तव्य है ।

५८.एकस्माद्दशपर्यन्ताङ्कस्य क्रमाद्दशभ्यो व्यवकलनेन व्यवकलनाङ्कसिद्धिः।।

"एकसे दसतकके अङ्कका क्रमशः दससे ऋण करने पर एकसे दसतकके ऋणाङ्ककी सिद्धि हो।।"

यथा;

१० - १ = ९.

१० - २ = ८

१० - ३ = ७.

१० - ४ = ६.

१० - ५ = ५.

१० - ६ = ४.

१० - ७ = ३.
१० - ८ = २.
१० - ९ = १.
१० - १० = ०.

५९.एकस्मान्नवपर्यन्ताङ्केषु क्रमान्नव[...] एकपर्यन्त्योजनेन धनाङ्कसिद्धि:।।

"एकसे नौतकके अङ्कसे क्रमश: नौसे एकपर्यन्त अङ्कके जोड़[...] धनाङ्क दसकी सिद्धि हो।।"

यथा;

१ + ९ = १०.
२ + ८ = १०.
३ + ७ = १०.
४ + ६ = १०.
६ + ४ = १०.
७ + ३ = १०.
८ + २ = १०.
९ + १ = १०.
५ + ५ = १०.

६०.वर्गान्ताद्वर्गस्थविकर्षणेन व्यवकलनाङ्क सिद्धि:।।

"वर्गान्तसे वर्गके प्रथमसे वर्गान्तातिरिक्त अन्तिम सङ्ख्यातक[...] ऋण करने पर क्रमिक ऋणाङ्ककी सिद्धि हो।।"

यथा;

२० - ११ = ९.
२० - १२ = ८.
२० - १३ = ७.
२० - १४ = ६
२० - १५ = ५
२० - १७ = ३.
२० - १८ = २
२० - १९ = १.

६१. एकस्य दश ।।

"एकके अङ्कधरका धनाङ्क दस होता है।।"

६२.दशपर्यन्तानां दश।।

"अभिप्राय यह है कि एकसे दस तकके अङ्कोंका धनाङ्क दस होता है।।"

६३.तदुत्तरं विंशति:पर्यन्तानां विंशति:।।

"दससे बीस तकके अङ्कका धनाङ्क बीस होता है।।"

६४.त्रिंशति: पर्यन्तानां त्रिंशत् ।।

"इक्कीससे तीस तकके अङ्कका धनाङ्क तीस होता है।।"

६५.क्रमेणानेन वर्गान्तेन सङ्कलनाङ्क-सिद्धिः।।

"इस क्रमसे एकसे दस, ग्यारहसे बीस, इक्कीससे तीस, [illegible] चालीस आदि वर्गगंत अन्तिम सङ्ख्यासे सङ्कलाङ्क (धनाङ्क)की सिद्धि [illegible] है।।"

६६.धनाङ्कात् प्रथमस्य ऋणेन व्यवकलनसिद्धिः।।

"धनाङ्कसे प्रथम चरणके ऋण करनेपर ऋणाङ्ककी सिद्धि [illegible] है।।"

२५

$\frac{३०}{२५}$; $\frac{३\bar{५}}{२५}$ ३०−५ = २५

$\frac{३०}{२५}$ ३० − २५ = ०५

= $\bar{५}$

धन.ऋणाङ्क = ३$\bar{५}$

२९

$\frac{३०}{२९}$; $\frac{३\bar{१}}{२९}$ ३०−१= २९

$\frac{३०}{२९}$ ३० − २९ = ०१

= $\bar{१}$

धन.ऋणाङ्क = ३$\bar{१}$

६७. वर्गान्तदशादेर्धनाङ्कता।।

"इस तरह वर्गान्त दशादिकी धनाङ्कता सिद्ध है ।।"

६८.नवादेस्तदधीनता।।

"नौ आदिकी उसकी अधीनता सिद्ध है ।।"

६९.यदङ्कधरो ज्ञेयस्तद्धनाङ्कादृणकरणेन ऋणाङ्कता।।

"जिसका अङ्कधर बनाना हो, उसका धनाङ्कसे ऋण करने पर ऋणाङ्ककी सिद्धि होती है।।"

३५४का अङ्कधर बनाना है। ४०० धनाङ्क है। ४००−३५४= ४६ ऋणाङ्क सिद्ध है।

$\frac{४००}{३५४}$; $\frac{\overline{४४६}}{३५४}$

४००−४६ = ३५४

७०.ऋणफलात्मकशेषस्य स्यादृणाङ्कता।।

"अत एव ऋणफलात्मक शेषकी ऋणङ्कता सिद्ध है।।"

७१.ऋणकेन सह शेषस्य शेषेण ऋणकस्य …मित्राङ्कता ।।

"ऋणकसे शेषकी और शेषसे ऋणककी इकाई – … मित्रता हो ।।"

यथा; ७० – ६३ = ०७ में ऋणक ६३ है और शेष ०७ … इकाई – स्थानापन्न ३ तथा ७ में परस्पर मित्रता है।

७२.एकस्थानीयस्य मित्राङ्केण एकस्थानीय… स्यादृणाङ्कता।।

"अङ्कधरके प्रथम चरणगत इकाई – स्थानापन्न अङ्कके मित्राङ्क… धन – ऋणाङ्कगत इकाई – स्थानापन्न ऋणाङ्ककी सिद्धि होती है।।"

यथा; २५९के इकाई – स्थानापन्न अङ्क ९ का मित्राङ्क… धनाङ्क ३०० में इकाई – स्थानापन्न ऋणाङ्क मान्य है।

७३.एकस्थानीयस्य दशतो व्यवकलने… मित्राङ्कता।।

"अङ्कधरके प्रथम चरणगत इकाई – स्थानापन्न अङ्कका मित्राङ्क… उसे दससे ऋण करनेपर प्राप्त होता है।।"

यथा; २५९के इकाई – स्थानापन्न अङ्क ९ का १० से ऋ… करने पर १ उसका मित्राङ्क सुलभ होता है।

७४.अन्येषां नवतो व्यवकलनेन मित्राङ्कता।।

"अङ्कधरके प्रथम चरणगत दहाई आदि – स्थानापन्न अङ्कका मित्राङ्क उसे नौसे ऋण करनेपर प्राप्त होता है।।"

यथा; २५९के दहाई – स्थानापन्न अङ्क ५ का ९ से ऋण करने पर ४ उसका मित्राङ्क सुलभ होता है।

७५.अन्यस्थानीयानां मित्राङ्कानामन्य-स्थानीयानां स्यादृणाङ्कता।।

"अङ्कधरके प्रथम चरणगत दहाई आदि – स्थानापन्न अन्तिमाङ्कसे एकाधिक वर्गान्तके अन्तिमाङ्कके मानाङ्ककी धनाङ्कता होती है एवम् अङ्कधरके प्रथम चरणगत इकाई आदि – स्थानापन्न मित्राङ्कोंकी वर्गान्त शून्यस्थानीय मित्राङ्कता तथा ऋणाङ्कता होती है ।।"

यथा; २५७ का अङ्कधर बनाना है, अतः २५७ अङ्कधरका प्रथम चरण है। उसका अन्तिमाङ्क सैकड़ा स्थानापन्न २ से एक अधिक सैकड़ा – स्थानापन्न ३ अर्थात् वर्गान्त ३०० धनाङ्क है। २५७ के इकाई – स्थानापन्न ७ का मित्राङ्क १० – ७ = ३ वर्गान्त ३००के इकाई – स्थानापन्न ऋणाङ्क है। २५७ के दहाई – स्थानीय ५ का मित्राङ्क ९ – ५ = ४ वर्गान्त ३००के दहाई – स्थानापन्न ऋणाङ्क है। इस तरह, ३०० – ४३= २५७ अङ्कधरका प्रथम चरण सिद्ध है।

७६.दशानां सिद्ध्यर्थं योज्ययोजक-योर्मित्राङ्कता।।

"दसकी सिद्धिके लिए योज्य तथा योजककी मित्राङ्कता मान्य है।।"

यथा;

	१०
१०	०
९	१
८	२
७	३
६	४
५	५

७७. सर्वत्राङ्कधरनिर्माणे कर्त्तव्यश्चाय-मेकाधिकम्।।

"वर्गादिसे वर्गान्तपर्यन्त समान अधिनियमकी दृष्टिसे जिस अङ्कधर वनाना हो, उसके अन्तिम अङ्कको एक अधिक करना चाहिए।"

७८.ऋणाङ्कसिद्धौ ऋते चरमं मित्राङ्कम् ।।

"चरमाङ्कके अतिरिक्तोंको ऋणाङ्ककी सिद्धिके लिए मित्राङ्क वन चाहिए।।"

७९.एकाद्युत्तरशून्यानां नवदशक्रमेण साक्षादृ स्यादृणाङ्कता ।।

"एक सौमें एकके, दो सौमें दोके उत्तरवर्ती शून्योंकी नौ तथ दसके क्रमसे अथवा साक्षात् ऋणाङ्कता मान्य है।।"

८०.मध्यगतानां नवत्वम्।।

"नौ तथा दस क्रममें मध्यवर्ती प्रत्येक शून्यके स्थानपर नौ होता है।"

सूत्र ७७ से ८०

प्रथम चरण	धनाङ्क	ऋणाङ्क	धन-ऋणाङ्क	मानाङ्क
			$२०^{-१०}$	१०
१०	२०	-१०	$१०^{-०}$	१०
१०	१०	०	$२००^{१०+१०}$	१००
१००	२००(१०+१०)		$१००^{-००}$	१००
१००	१००			
३००६	४०००	९९४	$४०००^{-९९४}$	३००६

८१.प्रथमं दशभ्यो न्यूनम्।।

"जिसका अङ्कधर वनाना हो, उसके इकाई – स्थानापन्न प्रथमाङ्कको दससे कम करे।।"

८२.मध्यस्थानां नवभ्यः।।

"जिसका अङ्कधर वनाना हो, उसके दहाई आदि – मध्यवर्ती अङ्कोंको नौसे कम करे।।"

सूत्र ८१ से ८२

१ ० ० ० ० ० ० ० ० ० ०

९ ८ ७ ६ ५ ४ ३ २ १

१० १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ९

९ ८ ७ ६ ५ ४ ३ २ १

१ ० ० ० ० ० ० ० ० ० ०

– १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ९

———————————

९ ८ ७ ६ ५ ४ ३ २ १

८३. क्रमाद्दशपर्यन्तं गुणनेन ।।

" जिसका अङ्कधर बनाना हो, उसे क्रमशः एकसे दसतक गुणनके द्वारा अङ्कधरका रूप प्रदान करे ।। "

एकसे दसतककी सङ्ख्याको एकसे गुणन करनेपर एकका अङ्कधर बनता है। दो आदिका अङ्कधर बनाना हो तो उसे क्रमशः एकसे दसतक गुणनके द्वारा अङ्कधरका रूप प्रदान किया जाता है। दो आदिको एकसे गुणन करने पर दो आदिके प्रथम चरणका अङ्कधर बनता है। तद्वत् दोसे गुणन करने पर दो आदिके द्वितीय चरणका अङ्कधर बनता है। तुल्य क्रमसे दस चरणोंमें अङ्कधर पूर्ण होता है।

यथा;

×

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १०

२	४	६	८	१०	१२	१४	१६	१८	२०.
३	६	९	१२	१५	१८	२१	२४	२७	३०.
४	८	१२	१६	२०	२४	२८	३२	३६	४०.
५	१०	१५	२०	२५	३०	३५	४०	४५	५०.
६	१२	१८	२४	३०	३६	४२	४८	५४	६०.
७	१४	२१	२८	३५	४२	४९	५६	६३	७०.
८	१६	२४	३२	४०	४८	५६	६४	७२	८०.
९	१८	२७	३६	४५	५४	६३	७२	८१	९०.
१०	२०	३०	४०	५०	६०	७०	८०	९०	१००.

८४. एकेन गुणनेन लब्धस्य द्व्यादिदशावृत्तियोजनेन ।।

" जिसका अङ्कधर अभिमत हो, उसे एकसे गुणन करनेपर उसका प्रथम चरणका अङ्कधर बनता है। उस गुणनफलको क्रमशः दस चरणों तक जोड़ते रहनेपर उसका अङ्कधर प्राप्त होता है।।"

यथा;

९ × १ = ९.

९ + ९ = १८. (९का उपयोग २ बार)

१८ + ९ = २७. (९का उपयोग १बार)

२७ + ९ = ३६. (९का उपयोग १बार)

३६ + ९ = ४५. (९का उपयोग १बार)

४५ + ९ = ५४. (९का उपयोग १बार)

५४ + ९ = ६३. (९का उपयोग १बार)

६३ + ९ = ७२. (९का उपयोग १बार)

७२ + ९ = ८१. (९का उपयोग १बार)

८१ + ९ = ९०. (९का उपयोग १बार)

(९का उपयोग १०बार)

८५.ऋणाङ्कानामृणनेन योज्याङ्कानां योजनेन कलनम् ।।

''ऋणाङ्कोंके ऋणसे और योज्याङ्कोंके योगसे अङ्कधरके धन व ऋणाङ्कका आकलन होता है।। ''

यथा;

१०००	१०४६
९५४	९५४

१०००	९५४
− ४६	+ ४६
९५४	१०००

८६.संयोगसंलग्नाभ्यामङ्कधरसिद्धिः ।।

''संयोग तथा संलग्नताके योगसे अङ्कधरकी सिद्धि होती है। अभिप्राय यह है कि शून्य और एकके योगसे क्रमशः एकाङ्ककी वृद्धिके द्वारा परार्द्धादिपर्यन्त सङ्ख्याकी सिद्धि होती है तथा एकसे ९ पर्यन्त ० से ९ तक

संलग्न करनेपर तथा दसवें स्थानपर प्राप्त १०, २०, ३० आदि सङ्ख्यासे १०को संयुक्त करने पर क्रमशः एककी परार्द्धादिपर्यन्त वृद्धि होती है।''

विवरण - ० + १ = १, १ + १ = २, २ + १ = ३, ३ + १ = ४, ४ + १ = ५, ५ + १ = ६, ६ + १ = ७, ७ + १ = ८, ८ + १ = ९, ९ + १ = १० क्रमसे १के संयोगसे परार्द्धपर्यन्त सङ्ख्याकी सिद्धि सम्भव है।

१ संलग्न ० = १० होता है। १ संलग्न १ = ११ होता है।१ संलग्न २ = १२ होता है।१ संलग्न ३ = १३ होता है।१ संलग्न ४ = १४ होता है।१ संलग्न ५ = १५ होता है। १ संलग्न ६= १६ होता है।१ संलग्न ७ = १७ होता है। १ संलग्न ८ = १८ होता है।१ संलग्न ९ = १९ होता है।१० संलग्न ० है।१०००संलग्न ० = १०००० होता है। तुल्यक्रमसे परार्द्धादिकी प्राप्ति होती है।

१९ + १ = २० होता है। २ संलग्न १ = २१ होता है। २ संलग्न २ = २२ होता है। २संलग्न ३ = २३ होता है। २ संलग्न ४ = २४ होता है। २ संलग्न ५ = २५ होता है। २ संलग्न ६ = २६ होता है। २ संलग्न ७ = २७ होता है। २ संलग्न ८ = २८ होता है। २ संलग्न ९ = २९ होता है। पुनः २९ + १ = ३० होता है। इस प्रकार एकसे ९ पर्यन्त ० से ९ तक संलग्न करनेपर तथा दशवें स्थानपर प्राप्त १०, २०, ३०, ४० आदि सङ्ख्यासे १०को संयुक्त करने पर क्रमशः एककी परार्द्धादि - पर्यन्तवृद्धि होती है।

८७.आरोहक्रमेणैकाधिकेन पूर्वेणाङ्क- धरसिद्धिः ॥

"पूर्वाङ्कसे एक अङ्क अधिक उत्तराङ्कसे अङ्कधरकी सिद्धि होती है।।"

***

८८.पूर्वान्तरालतोऽङ्कधरसिद्धिः ॥

"पूर्वके अन्तरालसे अङ्कधर (पहाड़े) की सिद्धि होती है।।"

८९.अवरोहक्रमेणैकन्यूनेन पूर्वेणाङ्कधर- सिद्धिः॥

"उत्तर अङ्कसे पूर्वाङ्क एक न्यून होता है; अतः पूर्वके अन्तरालसे अङ्कधर (पहाड़े) की सिद्धि होती है।।"

विवरण

पूर्व अङ्कके अन्तरालसे अभिमत अङ्कके अङ्कधरकी संरचना होती है। उदाहरणार्थ १ का **अङ्कधर** बनाना है। १ का पूर्वाङ्क ० है। अतः बिना व्यवधानके १ के अङ्कधरकी सिद्धि हो जाती है। २ का **अङ्कधर** बनता है। २ का पूर्वाङ्क १ है। अतः एकके व्यवधानके २के अङ्कधरकी सिद्धि हो जाती है। ३ का **अङ्कधर** बनाना है। ३ का पूर्वाङ्क २ है। अतः दोके व्यवधानके ३का अङ्कधर बनता है। तुल्यक्रमसे नौके अन्तरालसे दसका अङ्कधर बनता है।

२ के पहाड़ेमें क्रमशः २, ४, ६, ८, १०, १२, १४, १६, १८, २० अङ्क हैं। २ और ४के मध्यमें ३का, ४ और ६के मध्यमें ५का, ६ तथा ८के मध्यमें ७का, ८ तथा १०के बीचमें ९का, १० और १२के मध्यमें ११का, १२ तथा १४के मध्यमें १३का, १४ तथा १६के मध्यमें १५का, १६ तथा १८के मध्यमें १७का, १८ और २०के बीचमें १९का अदर्शन

… अङ्कके अन्तरालसे है। २ का पूर्वाङ्क १ है। इसी प्रकार, ३ के अङ्कधरमें ३, ६, ९, १२, १५, १८, २१, २४, २७, ३० में ३ और ६के मध्यमें ४, ५ का, ६ और ९के मध्यमें ७ तथा ८का अदर्शन ३ से एक अङ्क न्यून २ अङ्कोंका अन्तराल सिद्ध करता है।

किसी भी अङ्कका क्रमशः १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १० से गुणन उस अङ्कका अङ्कधर होता है। उदाहरणार्थ –

२ × १ = २, २ × २ = ४, २ × ३ = ६, २ × ४ = ८, २ × ५ = १०, २ × ६ = १२, २ × ७ = १४, २ × ८ = १६, २ × ९ = १८, २ × १० = २०।

ध्यान रहे, २ + १ = ३, जब कि २ × १ = २ होता है। २ + २ = ४ तथा २ × २ = ४ होता है। २ + ३ = ५ होता है, जब कि २ × ३ = ६ होता है। २ + १ = ३ और २ × १ = २ के अवलोकनसे सिद्ध है कि गुणनकी अपेक्षा योगसे सङ्ख्यामें वृद्धि प्राप्त है। २ + २ = ४ और २ × २ = ४ के अवलोकनसे सिद्ध है कि गुणन और योगसे समान सङ्ख्या प्राप्त है। २ + ३ = ५ और २ × ३ = ६ के अवलोकनसे यह सिद्ध है कि योगकी अपेक्षा गुणनसे अधिक सङ्ख्या प्राप्त है। १ × १ = १, १ × २ = २, १ × ३, = ३, १ × ४ = ४, १ × ५ = ५, १ × ६ = ६, १ × ७ = ७, १ × ८ = ८, १ × ९ = ९, १ × १० = १० होता है, जब कि १ + १ = २, १ + २ = ३, १ + ३ = ४, १ + ४ = ५, १ + ५ = ६, १ + ६ = ७, १ + ७ = ८, १ + ८ = ९, १ + ९ = १०, १ + १० = ११ होता है।

१ × १ = १	१ + १ = २
१ × २ = २	१ + २ = ३
१ × ३ = ३	१ + ३ = ४

३. अङ्कधराध्यायः

१ × ४ = ४
१ × ५ = ५
१ × ६ = ६
१ × ७ = ७
१ × ८ = ८
१ × ९ = ९
१ × १० = १०

१ + ४ = ५
१ + ५ = ६
१ + ६ = ७
१ + ७ = ८
१ + ८ = ९
१ + ९ = १०
१ + १० = ११

उक्त स्थलके अवलोकनसे स्पष्ट है कि गुणनफलकी अपेक्षा योगफल एक अङ्क न्यून है।

वस्तुस्थिति यह है कि योगका अर्थ है, योज्यसे योजकका संयोग तथा गुणनका अर्थ है, गुण्यका गुणकवार (गुणक सङ्ख्याके अनुरूप) प्रयोग। अभिप्राय यह है कि योज्यसे योजकका संयोग करनेपर योगफल सुलभ होता है और गुण्यका गुणकवार प्रयोग करनेपर गुणनफल सुलभ होता है। उदाहरणार्थ –

१	१	२	२	३	३
+१	×१	+१	×१	+१	×१
=२	= १	=३	=२	=४	
१	१	२	२	३	३
+ २	×२	२	×२	+२	×२
= ३	= २	=४	=४	=५	
१	१	२	२	३	३
+ ३	× ३	३	×३	३	×३
=४	=३	=५	=६	=६	९

२ + २ = ४ में प्रथम २ योज्य है और २ अर्थात् द्वितीय २

३. अङ्कधराध्यायः

× २ = ४ में प्रथम २ गुण्य है, योजक है और ४ योगफल है। २ × २ = ४ में प्रथम २ गुण्य है, अर्थात् द्वितीय २ गुणक है तथा ४ गुणनफल है।

१ से १० तकका अङ्कधर (पहाड़ा)

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
२	४	६	८	१०	१२	१४	१६	१८	२०
३	६	९	१२	१५	१८	२१	२४	२७	३०
४	८	१२	१६	२०	२४	२८	३२	३६	४०
५	१०	१५	२०	२५	३०	३५	४०	४५	५०
६	१२	१८	२४	३०	३६	४२	४८	५४	६०
७	१४	२१	२८	३५	४२	४९	५६	६३	७०
८	१६	२४	३२	४०	४८	५६	६४	७२	८०
९	१८	२७	३६	४५	५४	६३	७२	८१	९०
१०	२०	३०	४०	५०	६०	७०	८०	९०	१००

उपर्युक्त सारणीमें ऊपरसे नीचे और दायेंसे बायें १ से १० तकका अङ्कधर सन्निहित है।

११ से २० तकका अङ्कधर (पहाड़ा)

११	१२	१३	१४	१५
२२	२४	२६	२८	३०
३३	३६	३९	४२	४५
४४	४८	५२	५६	६०
५५	६०	६५	७०	७५
६६	७२	७८	८४	९०
७७	८४	९१	९८	१०५

८८	९६	१०४	११२	१२०
९९	१०८	११७	१२६	१३५
११०	१२०	१३०	१४०	१५०

१६	१७	१८	१९	२०
३२	३४	३६	३८	४०
४८	५१	५४	५७	६०
६४	६८	७२	७६	८०
८०	८५	९०	९५	१००
९६	१०२	१०८	११४	१२०
११२	११९	१२६	१३३	१४०
१२८	१३६	१४४	१५२	१६०
१४४	१५३	१६२	१७१	१८०
१६०	१७०	१८०	१९०	२००

१ के अङ्कधरके दशवें चरणमें १० है और ११ के अङ्कधरके दशवें चरणमें ११० है। ० विहीन १० एक है। ० विहीन ११० ग्यारह है। यदि दशमलवपद्धति न स्वीकार करें, तब अङ्कोंकी गति केवल ९ तक सीमित रहे। साथ ही स्वविहीन अङ्कको शून्य स्वीकार किये बिना योग, ऋण, गुणन और भाग आदिकी प्रक्रिया ही अपूर्ण सिद्ध हो।

१ + ९ = १० के अवलोकनसे यह तथ्य सिद्ध है कि ९के स्थानपर ० और १ के स्थानपर १ होता है। १ + १९ = २० के अवलोकनसे यह तथ्य सिद्ध है कि ९के स्थानपर ० और १ + १ के स्थानपर २ होता है। १ + २९ = ३० के अवलोकनसे यह तथ्य सिद्ध है कि ९के स्थानपर ० और १ + २ के स्थानपर ३ होता है।

१ + ९९ = १०० के अवलोकनसे यह तथ्य सिद्ध है कि एक

१ के स्थानपर एक १ और दो ९ के स्थानपर एक ० होता है। १ + ९९९ = १०००के अवलोकनसे यह तथ्य सिद्ध है कि एक १ के स्थानपर एक १ और तीन ९९९ के स्थानपर तीन ० होता है। १ + ९९९९ = १०००० के अवलोकनसे यह तथ्य सिद्ध है कि एक १ के स्थानपर एक १ और चार ९ के स्थानपर चार ० होता है।

११ + ९९ = ११० के अवलोकनसे यह तथ्य सिद्ध है कि दो एकके स्थानपर दो एक और दो ९के स्थानपर एक ० होता है। १ १ १ + ९९९ = १११०के अवलोंकनसे यह तथ्य सिद्ध है कि तीन एकके स्थानपर तीन एक और तीन ९के स्थानपर एक ० होता है। १ १ १ १ + ९९९९ = ११११०कें अवलोकनसे यह तथ्य सिद्ध है कि चार एकके स्थानपर चार एक और चार ९के स्थानपर एक ० होता है। तुल्यक्रमसे सर्वत्र यह तथ्य हृदयङ्गम करना चाहिए।

उक्त रीतिसे यदि योज्य केवल १ हो और योजक एक या एकसे अधिक ९ हो तब सर्वत्र योगफल १ से संलग्न नौकी सङ्ख्याके अनुरूप ० होता है।

यदि योज्य १ और योजक ९ सम सङ्ख्याके हों, तब योज्य १ की सङ्ख्याके अनुरूप १ से संलग्न एक या एकसे अधिक ९के स्थानपर केवल एक ० होता है।

१० + १ = ११ के अनुशीलनसे यह तथ्य सिद्ध है कि ० + १ = १ होता है। १ + १ = २, १ + २ = ३, ३ + १ = ४, ४ + १ = ५, ५ + १ = ६, ६ + १ = ७, ७ + १ = ८, ८ + १ = ९, ९ + १ = १० होता है, यह तथ्य सर्वविदित ही है। परन्तु १ + ९ = १० में १के स्थानपर १ और ९के स्थानपर एकसे संलग्न ० होता है, यह रहस्य हृदयङ्गम करने योग्य है।

१०, ११, १२, १३, १४, १५, १६, १७, १८, १९, २० में सन्निहित इकाई स्थानापन्न क्रमशः ०, १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, ० के अवलोकनसे ० प्रथमाङ्क सिद्ध होता है। ०का क्रमिक पर्यवसान ९ और ९का साक्षात् पर्यवसान ० सिद्ध होता है।

१०, २०, ३०, ४०, ५०, ६०, ७०, ८०, ९०, १०० के अवलोकनसे यह तथ्य सिद्ध है कि १०के अङ्कधरमें इकाईके स्थानमें सन्निहित शून्यविहीन होनेपर क्रमशः १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १० की प्राप्ति अर्थात् १के अङ्कधरकी स्वभावतः अनुगति है। ९, १८, २७, ३६, ४५, ५४, ६३, ७२, ८१, ९० के अवलोकनसे यह तथ्य सिद्ध है कि ९के अङ्कधरमें १८से ९०तक दहाई – स्थानापन्न १ से ९ तक १के अङ्कधरकी अनुगति है। शेष १०की अनुगति ९ × १० = ९० में है ही। ८, १६, २४, ३२, ४०, ४८, ५६, ६४, ७२, ८० के अवलोकनसे यह तथ्य सिद्ध है कि ८के अङ्कधरमें ७२से ८तक इकाई – स्थानापन्न २, ४, ६, ८, ०, २, ४, ६, ८की विलोमक्रमसे २ के अङ्कधरकी अनुगति है। शेष ०की अनुगति ८० में पूर्ववत् है। ७, १४, २१, २८, ३५, ४२, ४९, ५६, ६३, ७० के अवलोकनसे यह तथ्य सिद्ध है कि ७के अङ्कधरमें ६३से ७ तक इकाई – स्थानापन्न ७, ४, १, ८, ५, २, ९, ६, ३ की विलोमक्रमसे ३के अङ्कधरकी अनुगति है। ६, १२, १८, २४, ३०, ३६, ४२, ४८, ५४, ६० अवलोकनसे यह तथ्य सिद्ध है कि ६के अङ्कधरमें ५४से ६तक इकाई – स्थानापन्न ४, ८, २, ६, ०, ४, ८, २, ६की विलोमक्रमसे ४के अङ्कधरकी अनुगति है। शेष ० की अनुगति ६० गत ० में है ही। गणनाकी दृष्टिसे एक अङ्ककी सबसे छोटी सङ्ख्या १ और बड़ी सङ्ख्या ९ है। अतः १ से ९ तक अङ्कधरकी स्थिति मानकर ५का अङ्कधर मध्यवर्ती सिद्ध होता है।

९के अङ्कधरमें इकाई और दहाईगत अङ्कोंका योग सर्वत्र ९ ही होता है। उदाहरणार्थ १ + ८ = ९, २ + ७ = ९, ३ + ६ = ९, ४ + ५ = ९, ५ + ४ = ९, ६ + ३ = ९, ७ + २ = ९, ८ + १, = ९, ९ + ० = ९.

ध्यान रहे, १०, २०, ३०, ४०, ५०, ६०, ७०, ८०, ९०, १०० इस दसके अङ्कधरमें अङ्कोंके परस्पर योगसे १ का अङ्कधर बनता है। यथा -

१ + ० = १, २ + ० = २, ३ + ० = ३, ४ + ० = ४, ५ + ० = ५, ६ + ० = ६, ७ + ० = ७, ८ + ० = ८, ९ + ० = ९, १० + ० = १०.

११+ ९ = २०, १११ + ९९ = २१०, ११११ + ९९ = १२१० आदिके अनुशीलनसे यह तथ्य सिद्ध है कि योज्य १ यदि दोसे अधिक हों तथा योजक ९ योज्य १ की सङ्ख्यासे १ न्यून हों तब सर्वत्र योज्य स्थानीय प्रथम और द्वितीय १ के स्थानपर २ होता है तथा अवशिष्ट १ की सङ्ख्याके अनुरूप १ से संलग्न योजक एक या एकसे अधिक ९ के स्थानमें ० होता है।

११, २२, ३३, ४४, ५५, ६६, ७७, ८८, ९९, ११० इस ग्यारहके अङ्कधरमें अङ्कोंके परस्पर योगसे और शून्यस्थलमें शून्यकी संलग्नतासे २ का अङ्कधर बनता है। यथा;

१ + १ = २, २ + २ = ४, ३ + ३ = ६, ४ + ४ = ८, ५ + ५ = १०, ६ + ६ = १२, ७ + ७ = १४, ८ + ८ = १६, ९ + ९ = १८, १ + १ = २, २ संलग्न ० = २०.

११के अङ्कधरमें विशेष तथ्य यह सन्निहित है कि ११ से ९९ तक इकाई और दहाईके स्थानपर क्रमशः १, २, ३, ४, ५ ६, ७, ८, ९ की

अनुवृत्ति है। अभिप्राय यह है कि इकाई और दहाई स्थानपर क्रमश: १ से ९ तक समान अङ्ककी प्राप्ति है। दहाई स्थानपर क्रमश: १ से १ समान अङ्ककी प्राप्ति है। इसमें दूसरी चमत्कृति यह है कि ११ से ११ इकाई स्थानापन्न क्रमश: १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९ अर्थात् नौवें स्थानतक १ का अङ्कधर प्राप्त है। अवशिष्ट ११० में इकाई स्थानपर और दहाई स्थानपर १ अर्थात् १के अङ्कधरका दशमचरण १० प्राप्त है। तुल्यक्रमसे दहाई – स्थानपर क्रमशः १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९ अर्थात् नौवें स्थानतक १ का अङ्कधर प्राप्त है।

१ + २ = ३, २ + ४ = ६, ३ + ६ = ९, ४ + ८ = १२।

तेरहके अङ्कधरमें प्रथम तीन चरणतक अङ्कोंके परस्पर योगसे ४ का अङ्कधर बनता है। यथा –

१ + ३ = ४, २ + ६ = ८, ३ + ९ = १२।

चौदहके अङ्कधरमें प्रथम दो चरणतक अङ्कोंके परस्पर योगसे ५ का अङ्कधर बनता है। यथा –

१ + ४ = ५, २ + ८ = १०।

पन्द्रहके अङ्कधरमें प्रथम चरणतक अङ्कोंके परस्पर योगसे ६ अङ्क बनता है। यथा –

१ + ५ = ६।

सोलहके अङ्कधरमें प्रथम चरणतक अङ्कोंके परस्पर योगसे ७ अङ्क बनता है। यथा –

१ + ६ = ७.

सत्रहके अङ्कधरमें प्रथम चरणतक अङ्कोंके परस्पर योगसे ८ अङ्क बनता है। यथा –

१ + ७ = ८.

अट्ठारहके अङ्कधरमें प्रथम चरणतक अङ्कोंके परस्पर योगसे ९ अङ्क बनता है। यथा –

१ + ८ = ९.

उन्नीसके अङ्कधरमें प्रथम चरणतक अङ्कोंके परस्पर योगसे १० अङ्क बनता है। यथा –

१ + ९ = १०.

१+४ = ५, २ + ८ = १०।

१०.अभिमताङ्कयोगादङ्कधरसिद्धि:।।

"जिस अङ्कका अङ्कधर बनाना अभिमत हो, उस अङ्कको लिखनेके अनन्तर प्राप्त सङ्ख्यामें उस अङ्कका योग करते रहनेसे उस अङ्कका अङ्कधर बनता है।।"

विवरण :– उदाहरणार्थ १का अङ्कधर बनाना है। सर्वप्रथम एक लिखनेके अनन्तर १ में १ का योग करनेपर २ हुआ, २में १ जोड़नेपर ३, ३में १ जोड़नेपर ४ हुआ। तुल्यक्रमसे ९में १ का योग करनेपर १० होनेपर १ का अङ्कधर १०वें स्थानतक पूर्ण हुआ। २का अङ्कधर बनाना है। सर्वप्रथम दो लिखनेके अनन्तर २ में २ का योग करनेपर ४ हुआ, ४में २ जोड़नेपर ६, ६में २ जोड़नेपर ८ हुआ। तुल्यक्रमसे १८में २ का योग करनेपर २० होनेपर २ का अङ्कधर १०वें स्थानतक पूर्ण हुआ। इसी क्रमसे १०का अङ्कधर इस प्रकार है। –

१०. (१० + ०)

२०. (१० + १०)

३०. (२० + १०)
४०. (३० + १०)
५०. (४० + १०)
६०. (५० + १०)
७०. (६० + १०)
८०. (७० + १०)
९०. (८० + १०)
१००. (९० + १०)

९१. एकयोजितवामशून्यसहितोत्तरस- ङ्ख्यानुपाते नवभिः वामवर्त्तिसङ्ख्यागुणनफले शून्योत्तरयोजने सङ्ख्येयसिद्धिः।।

"एकसे योजित वामशून्यसहित उत्तरसङ्ख्यानुरूप नौसे वामव सङ्ख्याके गुणनफलमें शून्योत्तरवर्त्ती सङ्ख्याके योगसे सङ्ख्येयकी सि होती है।।"

इकाई, दहाई, सैकड़ा, हजार आदि दक्षिणसे वामकी ओर लिख तथा बोलनेकी वैदिकार्षविधा है। अत एव "अङ्कानां वामतो गतिः" यह प्रसिद्धि है। हिन्दीमें भी सौ तक यह क्रम परिलक्षित है। यथा; छियान छहका उल्लेख प्रथम तथा नब्बेके पश्चात् है। संस्कृतमें एक सौ दस 'दशाधिकशतम्' कहनेकी प्रथा है।

५२३००५४०१
=५२३ × (१+ ९९९९९९)+०५४०१
=५२३ × १०००००० + ५४०१

=५२३००००००+५४०१
=५२३००५४०१

३९०६७८
=३९ × (१+ ९९९९)+६७८
३९ × (१००००)+६७८.
=३९०००० +६७८
=३९०६७८.

९८७०
=९८७ × (१+ ९)+६७८
=९८७ × (१०)+६७८
=९८७०
=३९०६७८.

९२. दशादिक्रमेण वर्गान्तता ।।

"अन्तरालसहित अङ्कधरमें दस, बीस, तीस आदिके क्रमसे वर्गान्तता है।।"

९३.वर्गान्ते समशीलता ।।

"अन्तरालरहित और सहित अङ्कधरमें दस, बीस, तीस आदि वर्गान्तकी दृष्टिसे समशीलता है।।"

१४. प्रथमाङ्कधरे एकस्माद्दशपर्यन्त- योगफलं पञ्चपञ्चाशतम्।।

"अन्तरालरहित तथा अन्तरालसहित उभयविध अङ्कधरमें अनुगत आधाराङ्क एकके अङ्कधरका अर्थात् १ से १० तकका योगफल पचपन होता है।।"

१५.निरान्तराले वर्गक्रमेण शताधिकता।।

" १ से १०, ११ से २०, २१ से ३० आदि अन्तरालरहित वर्गक्रममें सौ – सौकी अधिकता सिद्ध है।।"

१६.सान्तराले वर्गक्रमेण पञ्चपञ्चशताधि- कता।।

"अन्तरालसहित २ से २०, ३ से ३०आदि वर्गक्रममें उत्तरोत्तर पचपनकी अधिकता सिद्ध है।।" यथा;

१	११	२१	३१	४१	५१	६१	७१	८१	९१
२	१२	२२	३२	४२	५२	६२	७२	८२	९२
३	१३	२३	३३	४३	५३	६३	७३	८३	९३
४	१४	२४	३४	४४	५४	६४	७४	८४	९४
५	१५	२५	३५	४५	५५	६५	७५	८५	९५
६	१६	२६	३६	४६	५६	६६	७६	८६	९६
७	१७	२७	३७	४७	५७	६७	७७	८७	९७
८	१८	२८	३८	४८	५८	६८	७८	८८	९८
९	१९	२९	३९	४९	५९	६९	७९	८९	९९

१०	२०	३०	४०	५०	६०	७०	८०	९०	१००
५५	१५५	२५५	३५५	४५५	५५५	६५५	७२२	८५५	९५५

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
२	४	६	८	१०	१२	१४	१६	१८	२०
३	६	९	१२	१५	१८	२१	२४	२७	३०
४	८	१२	१६	२०	२४	२८	३२	३६	४०
५	१०	१५	२०	२५	३०	३५	४०	४५	५०
६	१२	१८	२४	३०	३६	४२	४८	५४	६०
७	१४	२१	२८	३५	४२	४९	५६	६३	७०
८	१६	२४	३२	४०	४८	५६	६४	७२	८०
९	१८	२७	३६	४५	५४	६३	७२	८१	९०
१०	२०	३०	४०	५०	६०	७०	८०	९०	१००
५५	११०	१६५	२२०	२७५	३३०	३८५	४४०	४९५	५१०

४. द्व्यङ्काध्यायः

(द्व्यङ्कपद्धतिः, युग्माध्यायः, बाइनरी सिष्टम)

"द्व्यङ्कपद्धति" की संक्षिप्त रूपरेखा

गणकयन्त्र (कम्प्यूटर) में गणनाकी आधारशिला ० और १ है। जिसकी अभिव्यक्ति द्व्यङ्कपद्धति (बाइनरी - सिष्टम) से होती है। "द्व्यङ्कपद्धति" - का अर्थ है, भाजक २ से २ आदि किसी भी अङ्कमें भाग देनेपर भागफलको १से पूर्ववर्ती भागफलपर्यन्त भाज्य बनानेका वह प्रक्रम जिसमें २, ४ आदि सम भाज्याङ्कस्थलमें ० और ३, ५ आदि विषम भाज्याङ्कस्थलमें १ का शेष होना सुनिश्चित है। इस प्रक्रममें भागफल १ सम्प्राप्त शेष या शेषोंके अन्तमें अङ्कित होता है। प्रथम शेषसे भागफल १ तकके अङ्कोंका २°, २¹, २², २³, २⁴, २⁵, २⁶ आदि आवर्तक्रमसे निर्दिष्ट मान क्रमशः १, २, ४, ८, १६, ३२, ६४ आदि उत्तरोत्तर द्विगुणक्रमसे अङ्कित करनेके अनन्तर शून्यस्थानीय शेषके अतिरिक्त मानाङ्कोंका योगफल मूल भाज्याङ्क होता है।

द्व्यङ्कपद्धतिमें ० और १ दोनोंकी अनादिताके कारण, दोनोंकी शेषरूपता सिद्ध है। १ अन्योंकी अपेक्षा निर्विशेष और ० की अपेक्षा

सविशेष है। निर्विशेष १ शून्य है और सविशेष ० एक है। २, ३, ४ आदिमें शेषत्व आपेक्षिक होनेसे उपचरित है। शेषका भी शेषरूप चरम शेष ० है।

गणितजगत् में देहलीदीपन्यायसे पूर्ववर्ती अङ्क १ तथा ० को तथा उत्तरवर्ती अङ्क ३ तथा ४ आदिको उद्भासित करनेकी क्षमता २ में सन्निहित है। २ से २ तथा उत्तरवर्ती अङ्क ३, ४, ५, ६ आदि किसी भी अङ्कमें भाग देनेपर प्राप्त भागफलको २ का भाज्य बनाते रहनेपर पूर्णाङ्ककी दृष्टिसे चरम भागफल १ प्राप्त होता है और २, ४, ६ आदि सम सङ्ख्याका शेष ० तथा ३, ५, ७ आदि विषम सङ्ख्याका शेष १ प्राप्त होता है। कारण स्पष्ट है २ में २से भाग देनेपर भागफल १ होता है तथा शेष ० होता है। ३ में २ से भाग देनेपर भागफल १ तथा शेष १ होता है।

४ में २ से भाग देनेपर भागफल २ तथा शेष ० होता है। भागफल २ में पुनः २ से भाग देनेपर भागफल १ तथा शेष ० होता है। ५ में २ से भाग देनेपर भागफल २ तथा शेष १ होता है। पुनः भागफल २ में २ से भाग देनेपर भागफल १ तथा शेष ० होता है। ६ में २ से भाग देनेपर भागफल ३ तथा शेष ० होता है। पुनः भागफल ३ में २ से भाग देनेपर भागफल १ तथा शेष १ होता है। ७ में २ से भाग देनेपर भागफल ३ तथा शेष १ होता है। पुनः भागफल ३ में २ से भाग देनेपर भागफल १ तथा शेष १ होता है। ८ में २ से भाग देनेपर भागफल ४ तथा शेष ० होता है। पुनः भागफल ४में २ से भाग देनेपर भागफल २तथा शेष ० होता है। पुनः भागफल २में २ से भाग देनेपर भागफल १ तथा शेष ० होता है। ९ में २ से भाग देनेपर भागफल ४ तथा शेष १ होता है। पुनः भागफल ४ में २ से भाग देनेपर भागफल २ तथा शेष ० होता है। पुनः भागफल २ में २ से भाग देनेपर भागफल १ तथा शेष ० होता है। १०में २ से भाग देनेपर भागफल ५ तथा शेष ० होता है। पुनः भागफल ५ में २ से भाग देनेपर

भागफल २ तथा शेष १ होता है। पुनः भागफल २में २ से भाग देनेपर भागफल १ तथा शेष ० होता है। भागफल १ को भाज्य और २को भाजक बनानेपर ०.५ भागफल प्राप्त है और शेष ० प्राप्त होता है, न कि एकादि पूर्णाङ्कमें भागफल प्राप्त होता है। अतः भागफल १ को भाज्य बनानेकी अपेक्षा नहीं है। अन्तिम भागफल भाजक २ से १ न्यूनाङ्क है। अन्तिम भागफल १ से पूर्ववर्ती भागफल २ या ३ होनेपर ही भाजक २से उनमें भाग देनेपर शेष क्रमशः ०या १ हो सकता है। कारण यह है कि २का सन्निकट भाज्य २ या ३ हैं।

उक्त रीतिसे २ को भाजक और २ से परार्द्धादिपर्यन्त किसी भी अङ्कको भाज्य माननेपर चरम भागफल १ और शेष ० या १ की उपलब्धि होती है। **१ और ० अङ्कोंके आदि होनेसे मूलाङ्क हैं।**

ध्यान रहे, २ का साक्षात् भाज्य २ से १९ तक सीमित है। २० में २ से भाग देनेपर भागफल १० दो अङ्कोंमें प्राप्त होता है तथा शेष ० प्राप्त होता है। भागफल १० को पुनः २ से भाग देनेपर भागफल ५ और शेष ० प्राप्त होता है। भागफल ५ को पुनः २ से भाग देनेपर भागफल २ और शेष १ प्राप्त होता है। भागफल २ को पुनः २ से भाग देनेपर भागफल १ और शेष ० होता है।

उक्त समीकरणके सुसमीक्षणसे यह निष्कर्ष निकलता है कि १०, ११ में प्रथम चरणका भागफल और द्वितीय चरणका भाज्य पुनः ५ होता है। १२, १३ में प्रथम चरणका भागफल पुनः ६ होता है। १४, १५ में प्रथम चरणका भागफल और द्वितीय चरणका भाज्य पुनः ७ होता है। १६, १७में प्रथम चरणका भागफल और द्वितीय चरणका भाज्य पुनः ८ होता है। १८, १९ में प्रथम चरणका भागफल और द्वितीय चरणका भाज्य पुनः ९ होता है। इन अङ्कोंके अग्रिम चरणमें २ आदिकी पुनरावृत्ति होती है। इस प्रकार १ से ९ तक एक अङ्कवाली २ से ९ तककी सङ्ख्याको भाज्याङ्क बनानेसे ही प्रयोजनकी सिद्धि सम्भव है।

उक्त समीकरणके अवलोकनसे यह तथ्य सिद्ध होता है कि भाजक $२ \times १० = २०$ के एक अङ्क पूर्व १९ को २ से भाग देनेपर प्रथम भागफल ९ की प्राप्ति होती है तथा $२० \div २ = १०$ को २ से भाग देनेपर भागफल ५ की प्राप्ति होती है। ५से भागफलकी पुनरावृत्ति होने लगती है।

तद्वत् ३को भाजक बनानेपर $३ \times १० = ३०$ के एक अङ्क पूर्व २९ को ३ से भाग देनेपर प्रथम भागफल ९ की प्राप्ति होती है तथा $३० \div २ = १५$को ३ से भाग देनेपर भागफल ५ की प्राप्ति होती है। ५से भागफलकी पुनरावृत्ति होने लगती है।

तद्वत् ४ को भाजक बनानेपर $४ \times १० = ४०$ के एक अङ्क पूर्व ३९ को ४ से भाग देनेपर प्रथम भागफल ९ की प्राप्ति होती है तथा $४० \div २ = २०$ को ४ से भाग देनेपर भागफल ५ की प्राप्ति होती है। ५से भागफलकी पुनरावृत्ति होने लगती है।

तुल्यक्रमसे अन्यत्र भी उक्त विधाकी आवृत्ति आत्मसात् करने योग्य है।

नियम – **भाजकको १०से गुणन करनेपर प्राप्त गुणनफलसे आधी सङ्ख्यामें भाजकसे भाग देनेपर सम्प्राप्त सङ्ख्यासे भाज्यकी पुनरावृत्ति प्रारम्भ होती है तथा भाजकको १०से गुणन करनेपर प्राप्त गुणनफलसे १ सङ्ख्या न्यूनमें भाजकसे भाग देनेपर भागफल ९ की प्राप्ति होती है। जो कि समीकरणकी पूर्णताका द्योतक है। अन्तिम भागफल भाजकसे १ अङ्क न्यूनपर्यन्त होता है तथा शेष शून्यसे लेकर भाजकसे १ अङ्क न्यूनपर्यन्त होता है।**

उक्त रीतिसे २ को भाजक और २ से परार्द्ध (१सत्रह ०) आदिपर्यन्त किसी भी अङ्कको भाज्य माननेपर चरम भागफल १ और शेष ० या १ संज्ञक अङ्कादिरूप मूलाङ्ककी प्राप्ति होती है। कारण यह है कि अन्तिम भागफल भाजक २ से १ अङ्क न्यून ही हो सकता है। अन्तिम भागफल १ से पूर्ववर्ती भागफल २ या ३ होनेपर ही भाजक २से उनमें भाग देनेपर शेष क्रमशः ०या १ हो सकता है। कारण यह है कि २ का सन्निकट भाज्य २ या ३ है।

समीकरणसारणी

भाजक २ × १० = २०. २० ÷ २ = १०.

१० ÷ २ = ५ भागफल, ० शेष.
५ ÷ २ = २ भागफल, ० शेष.
२ ÷ २ = १ भागफल, ० शेष.

❁

९ ÷ २ = ४ भागफल, १ शेष.
४ ÷ २ = २ भागफल, ० शेष.
२ ÷ २ = १ भागफल, ० शेष.

❁

८ ÷ २ = ४ भागफल, १ शेष.
४ ÷ २ = २ भागफल, ० शेष.
२ ÷ २ = १ भागफल, ० शेष.

❁

७ ÷ २ = ३ भागफल, १ शेष.
३ ÷ २ = १ भागफल, १ शेष.

❁

६ ÷ २ = ३ भागफल, ० शेष.
३ ÷ २ = १ भागफल, १ शेष.

❁

५ ÷ २ = २ भागफल, १ शेष.
२ ÷ २ = १ भागफल, ० शेष.

❁

४ ÷ २ = २ भागफल, ० शेष.
२ ÷ २ = १ भागफल, ० शेष.

❁

३ ÷ २ = १ भागफल, १ शेष.

❁

२ ÷ २ = १ भागफल, ० शेष.

❁

भाजक	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
भाजक × १०	२०	३०	४०	५०	६०	७०	८०	९०	१००
(भाजक × १०) −१	१९	२९	३९	४९	५९	६९	७९	८९	९९
(भाजक × १०) ÷२	१०	१५	२०	२५	३०	३५	४०	४५	५०

⁂

उक्त रीतिसे २ को भाजक माननेपर चरम भागफलके रूपमें १ की और शेषके रूपमें अङ्काधार ० या १ की ही समुपलब्धि होती है। अतः २ को भाजक माननेमें लाघव (सुगमता) है।

१. द्विविभक्ता शून्यपर्यवसाना द्व्यादीनां युग्मसंज्ञा।।

''२, ४, ६, ८, १० आदि २ से विभक्त होनेवाली शून्यशेषसङ्ख्याकी युग्मसंज्ञा है।।

२.युग्मायुग्मस्थले द्विविधभाजकता।।

''दोसे विभक्त होनेवाली अर्थात् शून्यको शेष सिद्ध करनेवाली दे आदि और दोसे विभक्त न होनेवाली अर्थात् शून्यातिरिक्तको शेष सिद्ध करनेवाली तीन आदि सङ्ख्या- स्थलमें दोकी भाजकता है।।''

३. अतो द्वयोरावर्त्यरूपता ।।

''अत: दोकी आवर्त्यरूपता मान्य है। जैसा कि $२^{०}$, $२^{१}$, $२^{२}$, $२^{३}$, $२^{४}$, $२^{५}$, $२^{६}$, $२^{७}$ आदिके अनुशीलनसे सिद्ध है।''

४. द्व्यादीनां सर्वेषामेव युग्मरूपता।।

वार्तिक - वस्तुतस्तु द्विविभाज्या सकलापि ज्ञेया युग्मरूपिणी ।।

''शून्यमात्रको शेष रखनेका आग्रह छोड़ देनेपर दोसे विभक्त होनेके कारण एकातिरिक्त दो , तीन आदि सब सङ्ख्याकी युग्मरूपता सिद्ध है।।''

५.भाज्यस्य भागफलत्वादेकस्या- भाजकता।।

''भाज्यकी भागफलता; अत एव पूर्व भाज्यकी पुन: भाज्यरूपताके कारण एककी अभाजकता सिद्ध है।।'' यथा;

१)१(१,	१)२(२,	१)३(३,
१	२	३
—–	—–	—–
०	०	०

६.अतो द्वयो: प्रथमभाजकता।।

''अत: दोकी प्रथम भाजकता सिद्ध है।।''

भागके सैद्धान्तिक प्रशस्त प्रक्रमका प्रारम्भ २ को प्रथम भाजक तथा भाज्य मान कर होता है।

७.लब्धेर्भाज्यरूपता।।

''द्व्यङ्कपद्धति अर्थात् युग्मपद्धतिमें दोको भाजक बनानेपर भागफलकी भाज्यरूपता अभिमत है।।''

८. परिशेषे एकान्तता ।।

''क्रमश: भागफलके स्थानपर अन्तमें एककी समुपलब्धि होती है।।''

यथा;

भाजक	भाज्य	शेष
२)	२५	(१
२)	१२	(०
२)	६	(०
२)	३	(१
	१	

९.एकस्याभाज्यता।।

"चरम भागफल एकको अभाज्यता सिद्ध है।।"

१०. तस्माच्छेषरूपता।।

"अतएव उसकी शेषरूपता सिद्ध है।।"

११. विषमभाज्यस्थलैकस्य शेषरूपता।।

"३, ५, ७, ९, ११, २३, ३५, ४७, ५९ आदि विषम भाज्यस्थलमें एकको शेषरूपता सिद्ध है।।"

१२.समस्थले शून्यता।।

"२, ४, ६, ८, १०, १२, १४, १६, १८, २०आदि सम

भाज्यस्थलमें शून्यकी शेषरूपता सिद्ध है।।"

१३.शून्यवदेकस्य चरमशेषता।।

"शून्यसदृश एकको चरम शेषता सिद्ध है।।"

१४.अत एव द्वयोर्ह्यनादिता।।

"अत एव शून्य तथा एकको अनादिता सिद्ध है।।"

१५. सर्वत्र द्वयोरावर्त्यता।।

"शेषके मानाङ्कका निर्धारण करते समय सर्वत्र दोकी आवर्त्यरूपता सिद्ध है।।"

१६.एकाधिकेनोत्तरावर्तकता।।

"एकाधिकक्रमसे उत्तरावर्तकता सिद्ध है। जैसा कि $२^{०}$, $२^{१}$, $२^{२}$, $२^{३}$, $२^{४}$, $२^{५}$, $२^{६}$, $२^{७}$ आदिके अनुशीलनसे सिद्ध है।।"

१७.एकन्यूनेन पूर्वावर्तकता।।

"एकन्यूनक्रमसे पूर्वावर्तकता सिद्ध है। जैसा कि $२^{५}$, $२^{४}$, $२^{३}$, $२^{२}$, $२^{१}$ के अनुशीलनसे सिद्ध है।।"

१८.क्रमेणावर्त्याङ्कगुणकता।।

"द्व्यङ्क तथा त्र्यङ्कादि-पद्धतिमें क्रमशः आवर्त्याङ्कके अनुरूप गुणकता मान्य है।।"

यथा;

$२^{१} = २,\ २^{२} = ४,\ २^{३} = ८,\ २^{४} = १६$

$२ \times २ = ४,\ ४ \times २ = ८,\ ८ \times २ = १६$ आदि।

$३^{१} = ३, ३^{२} = ९, ३^{३} = २७$. आदि।

१९. अत एव शून्यस्य मानकता।।

"अत एव शून्यकी मानकता अर्थात् आवर्तकता मान्य है।।"

यथा;

$२^{०} = १;\ २^{१} = २,\ २^{२} = ४,\ २^{३} = ८$

२०.आवर्त्यभेदेन नाधिकता।।

"शून्यको आवर्तक माननेपर आवर्त्य दो, तीन आदिके भेदसे मानाङ्कमें भेदकी प्राप्ति नहीं होती। सर्वत्र मानाङ्क एक ही होता है।।"

२१.एकावर्तकस्थले आवर्त्यस्य मानाङ्कता।।+

"एकावर्तस्थलमें आवर्त्य दोकी मानाङ्कता मान्य है।।"

२२.शून्यावर्तकस्थले आवर्त्यस्य भाज्यभाजकता।।

"शून्यके आवर्तक स्थलमें आवर्त्य दोकी भाज्य - भाजकता सिद्ध है।।"

२३. अत एवैकस्य मानाङ्कता।।

" अत एव एककी मानाङ्कता सिद्ध है।।"

$२^{०} = १$

२) २ (१
  २

  ०

२४.द्वयोर्हि गुण्यगुणकता।।

"परन्तु $२^{२}, २^{३}, २^{४}$, $२^{५}$ आदि स्थलोंमें दोकी ही गुण्य तथा गुणकता सिद्ध है।।"

२५. आवर्त्यावर्तकविरहितप्रथमशेषस्य योज्यता।।

"वैदिक द्व्यङ्कपद्धतिमें प्रथम शेष आवर्त्य और आवर्तकभावसे रहित है; तथापि उसे योज्य मानना आवश्यक है।। "

२६.न शून्यस्यावर्तकता।।

"शून्यकी आवर्तकता अमान्य है।।"

$२^{०}$ =१ प्रतीकात्मक है, न कि गणितप्रक्रमके अनुरूप। कारण यह है कि $२^{०}$का अर्थ न २ की शून्यवार आवृत्ति चरितार्थ है, न शून्यगुणित २। $२^{०}$का अर्थ २ की शून्यवार आवृत्ति या शून्यगुणित २ माननेपर अर्थात् ० की सिद्धि होती है ; न कि एककी। कदाचित् २ की शून्यवार आवृत्तिका अर्थ पुनरावृत्तिरहित २ मान्य है, तब अर्थात् २ ही सिद्ध है; न कि १।

२७.आवर्तकानुरूपावर्त्यस्यावृत्तेर्गुणकता।।

"$२^{१}$, $२^{२}$, $२^{३}$, $२^{४}$ आदि स्थलोंमें आवर्तकके अनुरूप आवर्त्यकी आवृत्ति गुणकता है।।"

यथा;

$२^{१}$में आवर्त्य दो तथा आवर्तक एक है। अत: दोकी एक वार आवृत्ति मान्य है। $२^{२}$ में आवर्त्य दो तथा आवर्तक भी दो है। अत: दोकी दो वार आवृत्ति मान्य है। $२^{३}$में आवर्त्य दो तथा आवर्तक तीन है। अत: दोकी तीन वार आवृत्ति मान्य है। $२^{४}$ में आवर्त्य दो तथा आवर्तक चार है। अत: दोकी चार वार आवृत्ति मान्य है।

$२^{१}$ = २.

$२^{२}$ = २ × २ = ४.

$२^{३}$ = २ × २ × २ = ८.

$२^{४}$ = २ × २ × २ × २ = १६.

२८. आवर्तके क्रमादेकाधिकता।।

"$२^{१}$, $२^{२}$, $२^{३}$, $२^{४}$, $२^{५}$ आदि स्थलोंमें १, २, ३, ४, ५ आदि आवर्तकमें क्रमशः एकाधिकता है। इस दृष्टिसे $२^{१}$ गत आवर्तक १ की अपेक्षा एकाङ्क न्यून होनेके कारण $२^{०}$ में ०की आवर्तकता चरितार्थ है।।"

२९.मानाङ्के क्रमाद् द्विगुणता।।

"$२^{१}$ = २.

$२^{२}$ = २ × २ = ४.

$२^{३}$ = २ × २ × २ = ८.

$२^{४}$ = २ × २ × २ × २ = १६में क्रमशः मानाङ्ककी दृष्टिसे द्विगुणता है। इस दृष्टिसे भी $२^{०}$ में ०की आवर्तकता चरितार्थ है।।"

३०.शून्यस्य प्रथमाङ्कता।।

"$२^{१}$के पूर्व $२^{०}$को स्वीकार करनेपर एकसे शून्यकी पूर्वाङ्कता अर्थात् प्रथमाङ्कता सिद्ध है।।"

३१.अत एवावर्तकता।।

"अत एव शून्यकी आवर्तकता मान्य है।।"

३२.वस्तुतो द्वयोः शून्यावृत्त्यैक- स्यासिद्धता।।

"तथापि दोकी शून्य वार आवृत्तिसे एककी सिद्धि असम्भव है।।"

३३.त्र्याद्यावर्त्यस्थलेऽपि स्यादेकस्य मानाङ्कता।।

"शून्यको आवर्तक माननेपर तीन आदि आवर्त्यस्थलमें भी एकको ही मानाङ्कता सिद्ध होगी।।"

$२^० = १,\quad २^१ = २,\quad २^२ = ४;$

$३^० = १,\quad ३^१ = ३,\quad ३^२ = ९;$

$४^० = १,\quad ४^१ = ४,\quad ४^२ = १६.$

३४. अत एव निराकृता।।

"अत एव शून्यकी आवर्तकता निराकृत है।।"

३५.ऋणप्रक्रमे क्रमशः द्वयोर्न्यूनता।।

"ऋणके प्रक्रममें क्रमशः दोकी न्यूनता है।।"

भाजक २ मानने पर भागप्रक्रमकी और ऋणक २ मानने पर

ऋणप्रक्रमकी सिद्धि होती है। ऋणप्रक्रममें ऋणफलका अङ्कन विलोमक्रमसे करने पर ऋणफलके योगसे मूल ऋण्यकी साक्षात् प्राप्ति न होनेपर अग्रिम ऋणफलपर्यन्त चरणका निर्धारण होता है। यथा;

भाजक	भाज्य	प्रक्रम	ऋणक	प्रक्रम	विलोम
२	८	८	२	८	०
		४		६	२
		२		४	४
		१		२	६
				०	
		—			—
	चरण	४		चरण	४

३६.विलोमक्रमेण लिपिबद्धता।।

"उक्त स्थलमें या सदृश स्थलमें १, ३, ५, ७ आदि विलोमक्रमसे लिपिबद्धता अपेक्षित है।। "

सूत्र ३५ से ३६

यथा; भाज्यस्थानापन्न ऋण्य २७ तथा भाजकस्थानापन्न ऋणक २. तद्वत् भाज्यस्थानापन्न ऋण्य १६ तथा भाजकस्थानापन्न ऋणक २ और भाज्यस्थानापन्न ऋण्य १२ तथा भाजकस्थानापन्न ऋणक २.

चरण	अनुलोम	विलोम	अनुलोम	विलोम	अनुलोम	विलोम
	-२.	+२	-२.	+२	-२.	+२
१.	२७	१	१६	०	१२	०

२.	२५	३	१४	२	१०	२
३.	२३	५	१२	४	८	४
४.	२१	७	१०	६	६	६
५.	१९	९	८	८	४	८
६.	१७	११	६	१०	२	१०
७.	१५	१३	४	१२	०	१२
८.	१३	१५	२	१४		
९.	११	१७	०	१६		
१०.	९	१९				
११.	७	२१				
१२.	५	२३				
१३.	३	२५				
१४.	१	२७				

३७.साक्षाद्वोत्तरचरणता।।

"साक्षात् अथवा सङ्ख्येयके उत्तर चरणगत विलोम क्रमका अङ्क अपेक्षित है।।"

पूर्वोक्त विषमाङ्क २७ में क्रमिक २ की न्यूनतासे चौदहवें स्थानपर अन्तिम शेष १ सन्निहित है। एकादि विलोमक्रमसे छठे स्थानपर प्राप्त १, ३, ५, ७, ९, ११ के योग ३६ में भाज्यस्थानापन्न ऋण्य २७ सन्निहित है।

पूर्वोक्त समाङ्क १६ में क्रमिक २ की न्यूनतासे नवें स्थानपर प्राप्त अन्तिम शेष ० सन्निहित है। एकादि विलोमक्रमसे पाँचवें स्थानपर प्राप्त ०, २, ४, ६, ८ के योग २० में भाज्यस्थानापन्न ऋण्य १६ सन्निहित है।

पूर्वोक्त समाङ्क १२ में क्रमिक २ की न्यूनतासे सातवें स्थानपर प्राप्त ०, अन्तिम शेष ० सन्निहित है। एकादि विलोमक्रमसे चौथे स्थानपर प्राप्त ०, २, ४, ६ का साक्षात् योग भाज्यस्थानापन्न ऋण्य १२ सन्निहित है।

+ योगफल, + योगफल, + योगफल, + योगफल,

{१, ३} = ४, {१, ३, ५, ७} = १६, {१, ३, ५, ७, ९} = २५, {१, ३, ५, ७, ९, ११} = ३६

{१, ३, ५} = ९

विषमाङ्कस्थलमें साक्षात् चरणोपलब्धि

९

चरण	अनुलोम	विलोम
१.	९	१
२.	७	३
३.	५	५
४.	३	
५.	१	

२५

ऋणक २

चरण	अनुलोम	विलोम
१.	२५	१
२.	२३	३
३.	२१	५
४.	१९	७
५.	१७	९
६.	१५	—
७.	१३	२५
८.	११	
९.	९	
१०.	७	
११.	५	
१२.	३	
१३.	१	

२५

भाजक २

चरण	भाजक
१.	२५
२.	१२
३.	६
४.	३
५.	१

अधिनियम

(१) ३, ५, ७, ९, ११ आदि विषम सङ्ख्यामें २ के क्रमिक ऋणसे चरम विषमाङ्क १ की समुपलब्धि होती है। २, ४, ८, १०आदि सम सङ्ख्यामें २ के क्रमिक ऋणसे चरम समाङ्क ० की समुपलब्धि होती है।

(२) विषमसङ्ख्याके विलोमक्रममें चरम विषमाङ्क १ में २ के क्रमिक योगसे मूल ऋण्यसन्निहित सङ्ख्यातक योगप्रक्रम क्रियान्वित होता है।

(३) समसङ्ख्याके विलोमक्रममें चरम समाङ्क ० में २ के क्रमिक योगसे मूल ऋण्यसन्निहित सङ्ख्यातक योगप्रक्रम क्रियान्वित होता है।

(४) बिना अनुलोमक्रमके भी अधिनियम २ तथा ३ के अन्तर्गत

विषमाङ्क तथा समाङ्कका चरणनिर्धारण सम्भव है।

यथा;

ऋण्य १९

चरण	विलोमक्रम
१	१
२	३
३	५
४	७
५	९
	२५

ऋण्य २०

चरण	विलोमक्रम
१	०
२	२
३	४
४	६
५	८

३८.द्व्यङ्कप्रक्रमाच्चरणसदृशता।।

" द्व्यङ्कपद्धतिसे ऋणप्रक्रममें गोसदृश गवयतुल्य चरणसदृशता सिद्ध है।।"

यथा;

चरण २

२

द्व्यङ्कप्रक्रम

२	०	१	०
१	१	२	२

चरण २

३

द्व्यङ्कप्रक्रम

३	१	१
१	२	२

चरण ३

४

४	०	१	०
२	०	२	०
१	१	४	४

चरण ३

५

५	१	१	१
२	०	२	०
१	१	४	४

❀

चरण ३

६

६	०	६	०	१	०
४	२	३	१	२	२
२	४	१	१	४	४

❀

चरण ३

७

७	१	७	१	१
५	३	३	१	२
३	५	१	१	४

❀

चरण ४

८

८	०	८	०	१	०
६	२	४	०	२	०
४	४	२	०	४	०
२	६	१	८	८	८

❀

चरण ४

९

९	१	९	१	१	१
७	३	४	०	२	०

५	२	०	४	०
३	१	१	८	८

❀

चरण ४

१०

१०	०	१०	०	१	०
८	२	५	१	२	२
६	४	२	०	४	०
४	६	१	१	८	८

ऋणप्रक्रम

विलोमसमाङ्कप्रक्रम

०, २, ४, ६, ८, १०, १२,......

सङ्ख्या	२	६	१२	२०	३०	४२
चरण	२	३	४	५	६	७

० + २ = २.

० + २ + ४ = ६.

० + २ + ४ + ६ = १२.

० + २ + ४ + ६ + ८ = २०.

० + २ + ४ + ६ + ८ + १० = ३०.

० + २ + ४ + ६ + ८ + १० + १२ = ४२.

विलोमविषमाङ्कप्रक्रम

१+३=४.

१+३+५=९.

१+३+५+७=१६.

१+३+५+७+९=२५.

१+३+५+७+९+११=३६.

१+३+५+७+९+११+१३=४९.

....

४, ९, १६, २५, ३६, ४९,......

सङ्ख्या	४	९	१६	२५	३६	४९
चरण	२	३	४	५	६	७

द्व्यङ्कप्रक्रममें चरणनिर्धारण

सङ्ख्या	४	९	१६	२५	३६	४९
चरण	३	४	५	५	६	६

चरणनिर्धारण

चरण	मानाङ्क	पर्यन्त
१	१	केवल १
२	२	२ से ३ पर्यन्त
३	४	४ से ७ पर्यन्त
४	८	८ से १५ पर्यन्त
५	१६	१६से ३१ पर्यन्त
६	३२	३२ से ६३ पर्यन्त
७	६४	६४ से १२७ पर्यन्त
८	१२८	१२८ से २५५ पर्यन्त
९	२५६	२५६ से ५११ पर्यन्त

तुल्यक्रमका अनुवर्तन अग्रिम चरणमें भी कर्तव्य है।

३९. चरमाभाज्यभागफलस्य शेष- सदृशता।।

"चरम अभाज्य भागफलकी शेषसदृशता है।।"

भाजक	भाज्य	शेष	आवर्त		
२	१३	१	2^0	१	१
२	६	०	2^1	२	०
२	३	१	2^2	४	४
अभाज्य भागफल १			2^3	८	८
					१३

४०.शून्यैक-साधक-भाजकत्वाद् द्वयोरावर्त्य-रूपता ।।

"शून्य तथा एकका साधक भाजक दोकी आवर्त्यरूपता सिद्ध है।"

४१.शून्यस्थले मानाङ्कस्यागण्यता।।

"शून्यके शेष होनेपर मानाङ्क शून्य होता है।।"

४२.एकस्थानीयानां क्रमाद् द्विगुणमानाङ्क-योगात्सङ्ख्येयसिद्धिः।।

" शेष एकके स्थलोंमें क्रमशः द्विगुण मानाङ्कोंका योग मूल भाज्य होता है।।"

यथा;

प्रचिलत प्रक्रम

२) ७५ (१	$२^{०}$	१	१
२) ३७ (१	$२^{१}$	२	२
२) १८ (०	$२^{२}$	४	०
२) ९ (१	$२^{३}$	८	८

२) ४ (०	$२^{४}$	१६	०
२) २ (०	$२^{५}$	३२	०
१	$२^{६}$	६४	६४
			७५

वैदिक प्रक्रम

२) ७५ (१		१	१
२) ३७ (१	$२^{१}$	२	२
२) १८ (०	$२^{२}$	४	०
२) ९ (१	$२^{३}$	८	८
२) ४ (०	$२^{४}$	१६	०
२) २ (०	$२^{५}$	३२	०
१	$२^{६}$	६४	०

४३.भाजकेन गुणितमेकमवान्तरभाज्येभ्यो मिलितं शेषयुक्तञ्च मूलभाज्यम् ।।

(भाजक × चरम भागफल) + (अवान्तर भागफल) + शेष = मूल भाज्य.

भाजक	भाज्य	शेष	मान	ग्राह्य
२	३५	१	१	१
२	१७	१	२	२
२	८	०	४	०
२	४	०	८	०
२ २	०	१६		०
	१		३२	३२
				३५

भाजक	२					
भाज्य	३५	१७	८	४	२	
शेष	१	१	०	०	०	
चरम भागफल	१					
मान	१	२	४	८	१६	३२
ग्राह्य	१	२	०	०	०	३२

= ३५

(२ × १) + (२ + ४ + ८ + १७) + १ + १ + ० + ० + ०
= २ + ३१ + २
= ३५.

४४. चरमभाजकभागफलयोः गुणनफलेन प्रथम-शेषेण योजितस्य मध्यस्थानां भागफलसहितसम्मुखशेष-योजनेन सङ्ख्येयसिद्धिर्वा।।

"अथवा चरम भाजकसे गुणित चरम भागफलमें प्रथम शेषसे योजित मध्यवर्ती भागफलसहित सम्मुख शेषके योगसे मूल भाज्यकी सिद्धि होती है।।"

२	१३	१
२	६	०
२	३	१
	१	

(२ × १) + १ + (६ + ० + ३ + १)
= २ + १ + १०
= १३.

४५. चरमभाजकगुणित चरमभागफलेनावान्तर-भागफलयोजित शून्यातिरिक्तशेषयोगान्मूलभाज्यसिद्धिर्वा।।

"अथवा चरम भाजकसे गुणित चरम भागफलसे अवान्तर भागफलसे योजित शून्यातिरिक्त शेषोंके योगसे मूल भाज्यकी सिद्धि होती है।।"

२) २० (०
२) १० (०

२) ५ (१
२) २ (०
१

२ × १=२,
२ + (२ + ५ + १०)+१
= २ +१७ +१
=२०.

४६.शून्यातिरिक्तशेषमानाङ्कयोजितचरम-भागफल-सहितेन परस्परगुणितेन भाजकानां मूलभाज्यता वा।।

"अथवा शून्यातिरिक्त शेषके मानाङ्कसे योजित चरमभागफलसहित परस्परगुणित भाजकोंकी मूलभाज्यता है।।"

क्रमिक भाजक	२	२	२	२
क्रमिक भाज्य	१७	८	४	२
क्रमिक शेष	१	०	०	०
शेषमानाङ्क	१			
चरम भागफल	१			

२ × २ × २ × २ =१६.
१६× १ =१६.
१६ +१= १७.

४७.आवर्त्तप्रक्रमे ग्राह्यमानानां योगफलता मूलभाज्यता वा।।

"अथवा आवर्त्य – आवर्त्तकरूप आवर्त्तप्रक्रममें ग्राह्यमानाङ्कोंकी योगफलता मूलभाज्यता है।।"

भाजक	२				
भाज्य, भागफल	१९	९	४	२	१
शेष	१	१	०	०	
मानाङ्क	१	२	४	८	१६
ग्राह्यमानाङ्क	१	२	०	०	१६

अत: १ + २ + १६=१९.

४८.भागप्रक्रमे प्रथमचरणे भाज्यस्य भाजकता।।

"भाज्यप्रक्रममें प्रथम चरणमें भाज्यकी भाजकता सिद्ध है। अभिप्राय यह है कि सामान्य अथवा द्वयङ्कपद्धतिरूप विशेष भागस्थलमें भाजकसे न्यून भाज्य असिद्ध है; अत: भाजक स्वयं ही प्रथम भाज्य होता है।।"

४९. अत एवैकस्य भागफलता, शून्यस्य शेषता च।।

"अत एव उभयपक्षमें एककी भागफलता तथा शून्यकी शेषरूपता सिद्ध है।।"यथा;

भाजक भाज्य शेष
२) २ (१
२

०

भाजक भाज्य शेष

१३) १३ (१
    १३
    ——
    ० ०

(१३ × १) + ० = १३.

५०.भाज्यस्यैकाधिकता वा।।

"अथवा सन्निकट लाघवताकी दृष्टिसे भाजककी अपेक्षा भाज्यकी एकाधिकता ग्राह्य है।।"

५१.एकन्यूनेन भाजकेनैकस्य भागफलशेषता।।

"भाज्यकी अपेक्षा एक न्यून भाजकसे एककी भागफल शेषता सिद्ध है।।"

यथा;

भाजक भाज्य शेष

१२) १३ (१
    १२
    ——
    ०१

(१२ × १) + ०१ = १३.

५२.उभयस्थलैकचरणत्वाल्लाघवता।।

"उभयस्थलमें प्रथम चरणमें ही समीकरणकी पूर्णताके कारण लाघवता है ।।"

५३.भागफलेनगुणितशेषयोजितभाज- कस्य भाज्यरूपता।।

" भागफलसे गुणित शेषयोजित भाजककी भाज्यरूपता चरितार्थ है।।"

भाजक भाज्य शेष

१५) १६ (१
    १५
    ——
    ०१

(१५ × १) + १ = १६.

५४.भाज्ये आवर्त्यानुगत्यनुरूपा भागप्रक्रमता।।

"भाज्यमें भाजककी अनुगतिके अनुरूप भागप्रक्रमता अर्थात् चरणता मान्य है।। "

५५.तेनैकचरणाधिकावधिर्भागफलता।।

"उससे एक चरण अधिकपर्यन्त भागफलता है।।"

२४ = (२ × २ × २ × २) + ८

२	२४	०	१	०
२	२४	०	१	०
२	१२	०	२	०
२	६	०	४	०
२	६	०	४	०
२	३	१	८	८
	१		१६	१६

२४

चरण ५

३२ = (२ × २ × २ × २ × २)

२	३२	०	१	०
२	१६	०	२	०
२	८	०	४	०
२	४	०	८	०
२	२	०	१६	०
	१		३२	३२

३२

चरण ६

३५ = (२ × २ × २ × २ × २) + ३

२	३५	०	१	१
२	१७	०	१	२
२	८	०	४	०
२	४	०	८	०
२	२	०	१६	०
	१		३२	३२

३५

चरण ६

चरणनिर्धारण

चरण	मानाङ्क	पर्यन्त
१	१	केवल १
२	२	२ से ३ पर्यन्त
३	४	४ से ७ पर्यन्त
४	८	८ से १५ पर्यन्त
५	१६	१६से ३१ पर्यन्त
६	३२	३२ से ६३ पर्यन्त
७	६४	६४ से १२७ पर्यन्त
८	१२८	१२८ से २५५ पर्यन्त

९	२५६	२५६ से ५११ पर्यन्त	
१०	५१२	५१२ से १०२३ पर्यन्त	
११	१०२४		

तुल्यविधाका अनुगमन अग्रिम चरणोंमें भी कर्त्तव्य है।

५६.उत्तरावर्त्तमानाङ्कादेकन्यूनपर्यन्तेनावर्त्तकचरणता।।

"उत्तरावर्तके मानाङ्कसे एक न्यूनसङ्ख्यापर्यन्त आवर्तककी चरणता अर्थात् भागप्रक्रमकी पूर्णता सिद्ध है।। "

अभिप्राय यह है कि आवर्त्यके जिस चरणमें भाज्य सङ्ख्यासे अधिक सङ्ख्या सर्व प्रथम सन्निहित हो, उस (उतने) चरणमें अन्तिम भागफलात्मक शेषकी प्राप्ति होती है और उससे एक पूर्व चरणमें भागका प्रक्रम पूर्ण होता है। अभिप्राय यह है कि २ आदि आवर्त्यके क्रमिक मानाङ्ककी चरणसीमामें सन्निहित भाज्यका भागप्रक्रम उतने ही चरणोंमें पूर्ण होता है और चरम भागफलात्मक शेषकी समुपलब्धिका प्रक्रम उससे एक अधिक चरणमें पूर्ण होता है।

यथा ३१ का चरण निर्धारण करना है। उसका चरण - निर्धारक आवर्त्ययन्त्र निम्नलिखित है। -

आवर्त्य २

आवर्तक	मानाङ्क	मानाङ्कसीमा	चरण
२'. १	२	२ से ३ पर्यन्त	१
२'. २	४	४ से ७ पर्यन्त	२
२'. ३	८	७ से १५ पर्यन्त	३

२'. ४	१६	१६ से ३१ पर्यन्त	४
२'. ५	३२	३२ से ६३ पर्यन्त	५
२'. ६	६४	६४ से १२८ पर्यन्त	६
२'. ७	१२८	१२८से २५५ पर्यन्त	७
२'. ८	२५६	२५६से ५११ पर्यन्त	८
२'. ९	५१२		

२' में आवर्त्य २ और ३ आवर्तक है। २' का मान २ × २ × २ = ८ है। ८ से एक न्यून अङ्क ७ है। २' का उत्तरवर्ती आवर्त २' है। २' का मान २ × २ = ४ है। २' का मानक्षेत्र २' के साक्षात् मान ८ का सन्निकट पूर्वाङ्क ७ पर्यन्त है। अत: ४, ५, ६ तथा ७ को २ से भाग देनेपर २' के आवर्तक २ चरणोंमें भागप्रक्रम पूर्ण होता है और तीसरे चरणमें अभाज्य भागफल १ की समुपलब्धि सुनिश्चत है। यथा:

	भाजक	भाज्य	शेष	आवर्त	मान	ग्राह्य
	२)	४	(०	२'	१	०
चरण	२)	२	(०	२'	२	०
चरम भागफल		१		२'	४	४

मूल भाज्य ४

भाजक	भाज्य	शेष	आवर्त	मान	ग्राह्य
२)	७	(१	२'	१	१

चरण	२)	२	(०	$२^{१}$	२	२
चरम भागफल		१		$२^{२}$	४	४

मूल भाज्य ७

५७.अर्थाद्भाज्ये द्वयोरावर्त्तकावधि- श्चरणता।।

"अर्थात् मूल भाज्यमें भाजक दोके आवर्त्तक एकादिकी अवधिपर्यन्त भागप्रक्रमरूप चरण पूर्ण होता है। अभिप्राय यह है कि जिस आवर्तके अधीन जो भाज्य होता है, उसके आवर्तकके तुल्य चरणतक भागप्रक्रम पूर्ण होता है।।" यथा;

आवर्तक	मान	सीमा	चरण
$२^{१}$. १	२	२ से ३ पर्यन्त	१
$२^{२}$. २	४	४ से ७ पर्यन्त	२
$२^{३}$. ३	८	७ से १५ पर्यन्त	३
$२^{४}$. ४	१६	१६ से ३१ पर्यन्त	४
$२^{५}$. ५	३२	३२ से ६३ पर्यन्त	५
$२^{६}$. ६	६४	६४ से १२८ पर्यन्त	६
$२^{७}$. ७	१२८	१२८से २५५ पर्यन्त	७
$२^{८}$. ८	२५६	२५६से ५११ पर्यन्त	८
$२^{९}$. ९	५१२		

भाज्य २७

आवर्तक	मान	सीमा	चरण
$२^{४}$.४	१६	१६ से ३१ पर्यन्त	४

२) २७ (१
२) १३ (१
२) ६ (०
२) ३ (१
१

५८. भाजकगुणनफलानुरूपचरमभाग— फलमानाङ्कता।।

"चरम भागफलका मानाङ्क भाजकोंके गुणनफलके तुल्य होता है।।" यथा;

२)	१५ (	१	$२^{०}$	१
२)	७ (	१	$२^{१}$	२
२)	३ (	१	$२^{२}$	४
	१		$२^{३}$	८

२ × २ × २ = ८.

[redacted]

५९. अतिरिक्तं शेषफलत्वम्।।

"अतिरिक्त शेषोंका योगफल है।।"

२) १६ (० २' १ ०
२) ८ (० २' २ ०
२) ४ (० २' ४ ०
२) २ (० २' ८ ०
१ १६ १६
२ × २ × २ × २ =१६
अतिरिक्त ० + ० + ० + ० = ०
—
१६

२) १७ (१ २' १ १
२) ८ (० २' २ ०
२) ४ (० २' ४ ०
२) २ (० २' ८ ०
१ २' १६ १६
२ × २ × २ × २ =१६
अतिरिक्त १ + ० + ० + ० = १
—
१७

२) १८ (० २' १ ०
२) ९ (१ २' २ २
२) ४ (० २' ४ ०
२) २ (० २' ८ ०
१ २' १६ १६
२ × २ × २ × २ =१६
अतिरिक्त ० + २ + ० + ० = २
—
१८

सूत्रसङ्ख्या	१०९ + ४० + ९६ + ५९	= ३०४.
स्वविरचित	५५ + २७ + ९६ + ५९	= २३७.
सङ्कलित	५४ + १३ + ० + ०	= ०६७.

सूत्रसङ्ख्या – स्वविरचित = सङ्कलित २९७– २३०=०६७.

गणितसूत्रम्

मूलमात्रम्

१.आम्नायाध्यायः

१.अथातोऽङ्काम्नायानुशासनम् ।।
२.एकनवशून्यसमवायस्योङ्काररूपता।।
३.गणेयस्य गणना गणितम्।।
४.अ ण्।। इ क्।। उ ङ्।। ऋ च्।। लृ द्।। ए म्।। ऐ ञ्।। ओ श्।। औ ष्।। श स्।। अ श स्।। एकादिक्रमेण दश।।
५.असति सत् प्रतिष्ठितम् , सति भूतं प्रतिष्ठितम् ।।
६.एकैकयैषा सृष्ट्या संबभूव ।।
७.देशकालवस्तूनामाकलनं गणितम्।।
८.अक्षराम्नायवदङ्काम्नायेऽपि दशमलवसिद्धिः।।
०९.शून्यस्य प्रथमाङ्कता।।
१०.एकादिषु तस्याभिव्यञ्जकता।।
११.एकस्य सर्वाङ्करूपता ।।
१२.समविषमाभ्याम् ।।
१३.समाङ्काद्द्व्यधिकेन समाङ्कसिद्धिः।।

१४. विषमाङ्कादद्व्यधिकेन विषमाङ्कसिद्धिः।।
१५.स्वस्मादेकन्यूनेन योगाद् विषमाङ्कसिद्धिः
१६. समाङ्कादेकाधिकेन विषमाङ्कसिद्धिः।।
१७. विषमाङ्कादेकाधिकेन समाङ्कसिद्धिः।।
१८.एकाधिकेनोत्तराङ्कः।।
१९. एकन्यूनेन पूर्वाङ्कः।।
२०. अष्टाचक्रं वर्तत एकनेमि सहस्राक्षरम्।।
२१. दश शाकमजयन्त।।
२२. एका च मे तिस्रश्च मे पञ्च च मे सप्त च मे नव च मे ....।।
२३. चतस्रश्च मेऽष्टौ च मे द्वादश च मे षोडश च मे विंशतिश्च मे ....।।
२४. द्व्यादिक्रमेण द्विन्यूनेन क्रमाङ्कसिद्धिः।।
२५. शून्योत्तरत्वादुत्तराङ्कसिद्धिः।।
२६. स्वस्मान्न्यूनेन शून्यम् ।।
२७. दशादिगतशून्यादिक्रमानुरोधेन शून्यस्य प्रथमाङ्कता ।।
२८. नवनवनवत्यादेरुत्तराङ्कानुरोधेन शून्यस्य प्रथमाङ्कता ।।
२९.शून्याद्दशादिपर्यन्तं पञ्चादेर्मध्यवर्तिता, तस्माच्छून्यस्य प्रथमाङ्कता।।
३०. मानाङ्कविधेस्तुल्यत्वादेकादिसंलग्नशून्यवदसंलग्नस्यापि भावरूपता।।
३१.निर्विशेषावधित्वाच्छून्यस्य भावरूपता।।
३२. शून्यान्नवान्ता अङ्कमुखानि।।
३३.योज्ययोजकयोगेन दशादिषु विद्यमानता।।
३४. एकस्य नवयोगेन गणेयागणेयसि द्धिः।।
३५. एकादिभिः शून्यसंलग्नाद् दशादिसिद्धिः।।
३६.एकादिसंलग्नेनैकादिभिरेकादशादिसिद्धिः।।
३७. स्थानबलेन मानान्तरत्वम् ।।
३८. प्रागेव विद्यमानत्वाद्दशादिषु प्रविष्टता।।

३९. एकन्यूनात् पूर्वाङ्कता।।
४०. द्व्यादीनामेकस्मिन् समाहारः।।
४१. एकस्य च शून्ये समाहारः।।
४२. शून्यात् परतरं नास्ति सा काष्ठा सा परा गतिः।।
४३. एष सर्वेषु गूढोत्मा न प्रकाशते।।
४४. दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः।।
४५. मूले मूलाभावादमूलं मूलम् ।।
४६.शून्यादेकाङ्कन्यूनस्य न विधिमुखेनाङ्कशालिता
४७.मूले शून्यं विजानीयाच्छून्यं वै परं ब्रह्म।।
४८.स्वप्रयुक्त-वृद्धि-ह्रास-विरहत्वात् शून्यस्याङ्कमूलता ।।
४९. शून्येन गुणितं शून्यम्।।
५०.एकन्यूनेन शून्यत्वाच्छून्यादेकाधिकेनैकत्वात् स्वेन गुणितेन वृद्धिविरहत्वाच्चैकस्य प्रथमगणेयता।।
५१.स्वप्रयुक्तोत्तरत्वादेकस्य बीजरूपता ।।
५२. उत्तरस्थानयोगित्वात् शून्यस्य सर्वाङ्करूपता।।
५३.एकं तस्य वृद्धिर्ह्रासो वा गणितम् ।।
५४.न हि भावानां निरन्वयो निरुपाख्यो विनाशः।।
५५. नाशः कारणलयः।।
५६.यस्तु यस्यादिरन्तश्च स वै मध्यं च तस्य सन्।।
५७. आदावन्तेऽपि च सत्त्वानां यद् ध्रुवं तदेवान्तरालेऽपि।।
५८. शून्यं तत्त्वं, भावो विनश्यति वस्तुधर्मत्वाद्विनाशस्य ।।
५९. अविशेषाद्विशेषारम्भः।।
६०. नावस्तुतो वस्तुसिद्धिः।।
६१. भावान्तरमभावो हि कयाचित्तु (पदार्थान्तर) व्यपेक्षया।।
६२. पूर्वभावित्वे द्वयोरेकतरस्य हानेऽन्यतरयोगः।।
६३. शून्याधिष्ठितैकस्यैकाङ्कता, अत एवानादिता।।
६४. आद्यहेतुता तद्द्वारा पारम्पर्येण।।

६५. नासतोऽदृष्टत्वान्नृशृङ्गवत् ।।
६६. लयोदयाधिकरणत्वाच्छून्यस्य भावरूपता।।
६७. नाभावे वृद्धिह्रासता ।।
६८. शून्ये वृद्धिशक्तिता।।
६९. अत एव शून्यस्यानादिभावरूपताऽभावकल्पता च।।
७०. अभावकल्पतैव निर्विशेषता।।
७१.अविशेषश्चोभयो: ।।
७२. अनुलोमेन जायन्ते लीयन्ते प्रतिलोमत:।।
७३. शून्यं कृत्वा निरात्मकम्।।
७४. शिष्यते शेषसंज्ञ:।।
७५. शून्यो निरालय:।।
७६. एकवर्जित एकात्मा ।।
७७. एकसङ्ख्याविहीनात्मा ।।
७८.अनन्तस्य न तस्यान्त: सङ्ख्यानं चापि विद्यते।।
७९. अनन्त आद्य: ।।
८०.स्वेन विभक्तेनैकादीनाम् शून्यैकशेषफलत्वाच्छून्यैकस्यानाद्यनन्तता।।
८१.एतेन सर्वे व्याख्याता:।।
८२. सर्वाण्यशून्यानि करोत्यनन्त:।।
८३. सर्वानुस्यूतमद्वयम्।।
८४. अनादित्वादनन्तत्वात्तदनन्तमथाव्ययम्।।
८५. मायाहीनं मायिकं वा दन्तसंज्ञम्।।
८६.मायया सह मायाविकारै: संयुक्तमेकशब्दप्रवाचकम् ।।
८७. शक्तिशक्तिमतोरनन्यत्वात् ।।
८८. शक्तिर्न शक्तात्पृथक् ।।
८९.यदविज्ञेयं तदव्यक्तम् ।।
९०.दिवाकरारूढराहुवत् ।।
९१.यद् व्यज्यते तद् व्यक्तस्य व्यक्तत्वम्।।

९२.अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्त:।।
९३. एकानेकवर्जितम् शून्यम् ।।
९४.क्रियास्विव वस्तुनि विकल्पासिद्धे:।।
९५.अशून्यं शून्यमित्याहु:।।
९६. अशून्यं शून्यभावं तु ।।
९७.न भावाज्जायते भाव:।।
९८.भावोऽभावान्न जायते।।
९९.नाभावाज्जायतेऽभाव:।।
१००.अभावो भावान्न जायते।।
१०१. नास्त्यसद्धेतुकमसत् ।।
१०२.सदसद्धेतुकं तथा।।
१०३.सच्च सद्धेतुकं नास्ति।।
१०४. सद्धेतुकमसत्कुत:।।
१०५.सतो हि मायया जन्म युज्यते न तु तत्त्वत:।।
१०६. असतो मायया जन्म तत्त्वतो नैव जायते।।
१०७. क्षयिष्णव: सातिशया न निर्मला:।।
१०८. स्वनिमित्तकवृद्धिह्रासत्वादेकादेर्विकारता सातिशयता च।।
१०९. नहि सत्यस्य नानात्वम् ।।

२. परिभाषाध्यायः

०१. सर्वं सङ्ख्यानगोचरः ।।
०२. सङ्ख्या सङ्ख्येयनिष्ठा ।।
०३. सङ्ख्यैकद्व्यादिसंज्ञिका ।।
०४. अनन्तस्य न सङ्ख्यानम् ।।
०५. स्थानात्स्थानं दशगुणमेकस्माद्गण्यते ।।
०६. ततोऽष्टादशमे भागे परार्द्धमभिधीयते ।।
०७. एका च दश च परार्द्धश्च ।।
०८. योज्ययोजकसंयोगो योगः ।।
०९. विश्लेषणमृणम् ।।
१०. गुण्यस्य गुणकसङ्ख्यानुरूपसम्प्रयोगो गुणनम् ।।
११. गुणकानुरूपं गुण्यावृत्तिमेलनं वा गुणनम् ।।
११. गुणकानुरूपं गुण्यावृत्तिमेलनं वा गुणनम् ।।
१२. भाज्ये भाजकानुगत्यवशेषसमुल्लेखो भागः ।।
१३. एकेनारभ्य भाज्याङ्कपर्यन्तं भाजकेन भागो विधेयः ।।
१४. योगफलाद्योजकविलोपनं योज्यसिद्धिः ।।
१५. योगफलाद्योज्यविलोपनं योजकसिद्धिः ।।
१६. ऋण्याद् ऋणकर्णेन ऋणफलम् ।।

१७. ऋणफलेनर्णकस्य योगण्र्यम् ।।
१८. ऋण्यादृणफलस्य विलोपनमृणकम् ।।
१९. गुणनफले गुणकस्य भागो गुण्यम् ।।
२०. गुणनफले गुण्यस्य भागो गुणकम् ।।
२१. भाज्यर्णके भाजकेन भागो भागफलम् ।।
२२. भाजकेन भागफलस्य गुणनं शेषस्य च योजनं भाज्यम् ।।
२३. भागफलगुणितं शेषेण सहितञ्च भाजकं भाज्यम् ।।
२४. भाज्यर्णके भागफलेन भागो भाजकम् ।।
२५. भाजकेन गुणितं भागफलविरहितं च भाज्यं शेषम् ।।
२६. भागफलेन गुणितं भाजकं भाज्यर्णकम् ।।
२७. गुणादिषु पूर्वोत्तराणां सन्निकर्षः ।।
२८. योगभागसमाहारो गुणनम् ।।
२९. गुण्यो भाजकः ।।
३०. गुणको भागफलम् ।।
३१. ऋणगुणनसहस्थितिर्भागः ।।
३२. राशिं गणितम् ।।
३३. गणो गणितम् ।।
३४. शून्यैकस्य समाहारो गणितम् ।।
३५. स्वाधीनं त्वायसंज्ञकम् ।।
३६. पराधीनं कृतं व्ययसंज्ञम् ।।
३७. अपचयो व्ययः ।।
३८. अङ्गुलाद्यं स्मृतं मानम् ।।
३९. उन्मानं तु तुला स्मृता ।।
४०. परिमाणं पात्रमानम् ।।

३.अङ्कधराध्यायः

०१. अङ्कानामन्तरालरहितसहितक्रमेणाङ्कनप्रकारोऽङ्कधरः।।
०२.अत एव द्विविधः ।।
०३. एकादीनामेकेन युक्तेन सङ्ख्याक्रमेणाङ्कधरसिद्धिः।।
०४.एकादिक्रमेणैकादेर्गुणकेन गुणनादङ्कधरसिद्धिः।।
०५.क्रमाद्दशचरणेष्वेकादियोगेनाङ्कधरसिद्धिः।।
०६. तस्मात्प्रथमस्योभयता।।
०७.आतानवितानघटितान्तरालसहिताङ्कधरे वृद्धिङ्गतसमशीलता।।
०८.आतानवितानघटितान्तरालरहिताङ्कधरे दशानामाताने विताने चैकस्य वृद्धिशालिता नवानामन्तरालता च।।
०९.द्व्याद्यङ्कधरस्थलैकादिक्रमेणान्तरालता।।
१०.तस्मादभिमताङ्कधरादेकन्यूनान्तरालता।।
११. क्रमाद्दशचरणेष्वेकादेः गुणनेनाङ्कधरसिद्धिः।।
१२.क्रमाद्दशपर्यन्तेन गुणितेनाङ्कधरसिद्धिः।।
१३.प्रकृतमेकेन युञ्जीयात् ।।
१४. दशादीनां वर्गान्तता ।।
१५.एकस्य नवभिः।।
१६.द्वयोरष्टाभिः।।
१७.त्रयाणां सप्तभिः।।
१८.चतुर्णां षड्भिः।।
१९.पञ्चानां पञ्चभिः।।

२०.शून्यस्य दशभिः।।
२१. अवशिष्टानां पूर्ववन्मित्राङ्कता।।
२२.दशपर्यन्तमङ्केषु पञ्चानां मध्याङ्कता।।
२३. दशानां सुमेरुता ।।
२४.प्रथमान्तिमक्रमेण मित्राङ्कता।।
२५. युगलेन दशाङ्कता।।
२६.वर्गान्तैकाधिकता ।।
२७.अर्धाद्वर्गान्तस्य धनाङ्कता ।।
२८.ऋणकशेषयोर्मित्रता ।।
२९. उभयस्य योजनेन मित्राङ्कस्थले दशाङ्कता।।
३०.सर्वत्र दशानामृण्यरूपता।।
३१. एकादिनवपर्यन्तानां दशस्थले शून्यता।।
३२ .चरमस्य नैकाधिकता।।
३३.तस्माद्वर्गान्तस्य धनाङ्कता।।
३४.ऋणाङ्के एकादिस्थानापन्नशून्यस्य शून्यता।।
३५.सम्मुखस्य दशाधिकता।।
३६.प्रथमपादस्याधाराङ्कता ।।
३७.दशसाधकयोज्ययोजकयोर्मित्राङ्कता ।।
३८. एकादिनवपर्यन्तानां दशस्थले शून्यता।।
३९. शून्यान्नवपर्यन्तमेकस्थानीयम् ।।
४०.दशस्थानापन्नैकस्य धनाङ्कता, शून्यस्थानापन्नमित्राङ्कस्य च ऋणाङ्कता ।।
४१.एकस्थले मित्राङ्केन सम्प्रसारणम्।।
४२. मित्राङ्कमृणाङ्केन चिह्नितम्।।
४३.धनादृणितस्याधाराङ्कता।।
४४.वर्गान्ततिरिक्तदशादिचरमस्थलैकाधिकता ।।
४५.अर्धाद्वर्गान्तस्य धनाङ्कता ।।

४६.अर्थादतिरिक्तस्थले वर्गान्तस्य धनाङ्कता।।

४७.अवशिष्टं शून्येन पूरयेत् ।।

४८.एकाधिकेन चरमेण धनाङ्कतासिद्धिः।।

४९.ऋणकतासिद्धिश्चरमातिरिक्तेन ।।

५०.एकादिस्थानीयशून्यस्य स्वस्यैव मित्राङ्कता ।।

५१. दशादिस्थानीयानां शून्यानां नवाङ्करीत्या मित्राङ्कता।।

५२. दशादिस्थले शून्यस्थानीयानामृणाङ्कता।।

५३.एकादिस्थानीयशून्योत्तरैकादीनां वर्गान्तता।।

५४.वर्गान्तसन्निहितैकादिस्थानीयमित्राङ्कमानानां योजनादृणाङ्कसिद्धिः।।

५५.वर्गान्तसन्निहितशून्यानुपातेन दशभिर्गुणनेन वा ऋणाङ्कसिद्धिः।।

५६.पूर्वस्मात्सङ्कलनव्यवकलनेन व्यवकलनसङ्कलनाभ्यामुत्त- रसिद्धिः ।।

५७.ऋणाङ्कस्य व्यवकलनेन धनाङ्कस्य योजनेनोत्तरचरणता ।।

५८.एकस्माद्दशपर्यन्ताङ्कस्य क्रमाद्दशभ्यो व्यवकलनेन व्यवकलनाङ्कसिद्धिः।।

५९.एकस्मान्नवपर्यन्ताङ्केषु क्रमान्नवभ्य एकपर्यन्तयोजनेन धनाङ्कसिद्धिः।।

६०.वर्गान्ताद्वर्गस्थविकर्षणेन व्यवकलनाङ्कसिद्धिः।।

६१. एकस्य दश।।

६२.दशपर्यन्तानां च दश।।

६३.तदुत्तरं विंशतिःपर्यन्तानां विंशतिः।।

६४.त्रिंशतिः पर्यन्तानां त्रिंशत् ।।

६५.क्रमेणानेन वर्गान्तेन सङ्कलनाङ्कसिद्धिः ।।

६६.धनाङ्कात् प्रथमस्य ऋणेन व्यवकलनसिद्धिः ।।

६७. वर्गान्तदशादेर्धनाङ्कता।।

६८.नवादेस्तदधीनता।।

६९.यदङ्कधरो ज्ञेयस्तद्धनमङ्कादृणकरणेन ऋणाङ्कता।।

७०.ऋणफलात्मकशेषस्य स्यादृणाङ्कता।।

७१.ऋणकेन सह शेषस्य शेषेण ऋणकस्य चैकस्थले मित्राङ्कता।।

७२.एकस्थानीयस्य मित्राङ्केण एकस्थानीयस्य स्यादृणाङ्कता।।

७३.एकस्थानीयस्य दशतो व्यवकलनेन मित्राङ्कता।।

७४.अन्येषां नवतो व्यवकलनेन मित्राङ्कता।।

७५.अन्यस्थानीयानां मित्राङ्कानामन्यस्थानीयानां स्यादृणाङ्कता।।

७६.दशानां सिद्ध्यर्थं योज्ययोजकयोर्मित्राङ्कता।।

७७.सर्वत्राङ्कधरनिर्माणे कर्त्तव्यश्चरममेकाधिकम्।।

७८.ऋणाङ्कसिद्धौ ऋते चरमं मित्राङ्कम् ।।

७९.एकाद्युत्तरशून्यानां नवदशक्रमेण साक्षाद्वा स्यादृणाङ्कता ।।

८०.मध्यगतानां नवत्वम्।।

८१.प्रथमं दशभ्यो न्यूनम्।।

८२.मध्यस्थानां नवभ्यः।।

८३. क्रमाद्दशपर्यन्तं गुणनेन ।।

८४. एकेन गुणनेन लब्धस्य द्व्यादिदशावृत्तिर्योजनेन ।।

८५.ऋणाङ्कानामृणनेन योज्याङ्कानां योजनेनाकलनम् ।।

८६.संयोगसंलग्नाभ्यामङ्कधरसिद्धिः।।

८७.आरोहक्रमेणैकाधिकेन पूर्वेणाङ्कधरसिद्धिः ।।

८८.पूर्वान्तरालतोऽङ्कधरसिद्धिः ।।

८९.अवरोहक्रमेणैकन्यूनेन पूर्वेणाङ्कधरसिद्धिः।।

९०.अभिमताङ्कयोगादङ्कधरसिद्धिः।।

९१.एकयोजितवामशून्यसहितोत्तरसङ्ख्यानुपातेन नवभिः वामवर्त्तिसङ्ख्यागुणनफले शून्योत्तरयोजनेन सङ्ख्येयसिद्धिः।।

९२. दशादिक्रमेण वर्गान्तता ।।

९३.वर्गान्ते समशीलता ।।

९४. प्रथमाङ्कधरे एकस्माद्दशपर्यन्तयोगफलं पञ्चपञ्चाशतम्।।

९५.निरान्तराले वर्गक्रमेण शताधिकता।।

९६.सान्तराले वर्गक्रमेण पञ्चपञ्चशताधिकता।।

४.द्व्यङ्काध्यायः

(द्व्यङ्कपद्धतिः, युग्माध्यायः, बाइनरी सिष्टम)

०१. द्विविभक्ता शून्यपर्यवसाना द्व्यादीनां युग्मसंज्ञा।।
०२.युग्मायुग्मस्थले द्विविधभाजकता।।
०३. अतो द्वयोरावर्त्यरूपता ।।
०४. द्व्यादीनां सर्वेषामेव युग्मरूपता।।
वार्त्तिक- वस्तुतस्तु द्विविभाज्या सकलापि युग्मरूपिणी।।
०५.भाज्यस्य भागफलत्वादेकस्याभाजकता ।।
०६.अतो द्वयोः प्रथमभाजकता।।
०७.लब्धेर्भाज्यरूपता।।
०८. परिशेषे एकान्तता ।।
०९.एकस्याभाज्यता।।
१०. तस्माच्छेषरूपता।।
११. विषमभाज्यस्थलैकस्य शेषरूपता।।
१२.समस्थले शून्यता।।
१३.शून्यवदेकस्य चरमशेषता।।
१४.अत एव द्वयोर्हीनादिता।।
१५. सर्वत्र द्वयोरावर्त्यता।।
१६.एकाधिकेनोत्तरावर्तकता।।

१७.एकन्यूनेन पूर्वावर्तकता।।
१८.क्रमेणावर्त्याङ्कगुणकता।।
१९. अत एव शून्यस्य मानकता।।
२०.आवर्त्यभेदेन नाधिकता।।
२१.एकावर्तकस्थले आवर्त्यस्य मानाङ्कता।।
२२.शून्यावर्तकस्थले आवर्त्यस्य भाज्यभाजकता।।
२३. अत एवैकस्य मानाङ्कता।।
२४.द्वयोर्हि गुण्यगुणकता।।
२५. आवर्त्यावर्तकविरहितप्रथमशेषस्य योज्यता।।
२६.न शून्यस्यावर्तकता।।
२७.आवर्तकानुरूपावर्त्यस्यावृत्तेर्गुणकता।।
२८. आवर्तके क्रमादेकाधिकता।।
२९.मानाङ्के क्रमाद् द्विगुणता।।
३०.शून्यस्य प्रथमाङ्कता।।8
३१.अत एवावर्तकता।।
३२.वस्तुतो द्वयोः शून्यावृत्त्यैकस्यासिद्धता।।
३३.त्र्याद्यावर्त्यस्थलेऽपि स्यादेकस्य मानाङ्कता।।
३४. अत एव निराकृता।।
३५.ऋणप्रक्रमे क्रमशः द्वयोर्न्यूनता।।
३६.विलोमक्रमेण लिपिबद्धता।।
३७.साक्षाद्वोत्तरचरणता।।
३८.द्व्यङ्कप्रक्रमाच्चरणसदृशता।।
३९.चरमाभाज्यभागफलस्य शेषसदृशता।।
४०.शून्यैक-साधक-भाजकत्वाद् द्वयोरावर्त्यरूपता ।।
४१.शून्यस्थले मानाङ्कस्यागण्यता।।
४२.एकस्थानीयानां क्रमाद् द्विगुणमानाङ्कयोगात् सङ्ख्येयसिद्धिः।।
४३.भाजकेन गुणितमेकमवान्तरभाज्येभ्यो मिलितं शेषयुक्तं च मूलभाज्यम् ।।

४४.चरमभाजकभागफलयोः गुणनफलेन प्रथमशेषेण योजितस्य मध्यस्थानां भागफलसहितसम्मुखशेषयोजनेन सङ्ख्येयसिद्धिर्वा।।

४५.चरमभाजकगुणित चरमभागफलेनावान्तरभागफलयोजित शून्यातिरिक्तशेषयोगान्मूलभाज्यसिद्धिर्वा।।

४६.शून्यातिरिक्तशेषमानाङ्कयोजितचरमभागफलसहितेन परस्परगुणितेन भाजकानां मूलभाज्यता वा।।

४७.आवर्त्तप्रक्रमे ग्राह्यमानानां योगफलता मूलभाज्यता वा।।

४८.भागप्रक्रमे प्रथमचरणे भाज्यस्य भाजकता।।

४९. अत एवैकस्य भागफलता, शून्यस्य शेषता च।।

५०.भाज्यस्यैकाधिकता वा।।

५१. एकन्यूनेन भाजकेनैकस्य भागफलशेषता।।

५२.उभयस्थलैकचरणत्वाल्लाघवता।।

५३.भागफलेनगुणितशेषयोजितभाजकस्य भाज्यरूपता।।

५४.भाज्ये आवर्त्यानुगत्यनुरूपा भागप्रक्रमता।।

५५.तेनैकचरणाधिकावधिर्भागफलता।।

५६.उत्तरावर्त्तमानाङ्कादेकन्यूनपर्यन्तेनावर्त्तकचरणता।।

५७.अर्थाद्भाज्ये द्वयोरावर्त्तकावधिश्चरणता ।।

५८.भाजकगुणनफलानुरूपचरमभागफलमानाङ्कता।।

५९. अतिरिक्तं शेषफलत्वम्।।

सूत्रसङ्ख्या १०९ + ४० + ९६ + ५९ = ३०४.

ॐ

प्रार्थना

स्वस्त्यस्तु विश्वस्य खलः प्रसीदताम्
ध्यायन्तु भूतानि शिवं मिथो धिया।
मनश्च भद्रं भजतादधोक्षजे
आवेश्यतां नो मतिरप्यहैतुकी।।
(श्रीमद्भागवत ५. १८.९)

"हे प्रभो ! विश्वका कल्याण हो। दुष्ट दुष्टतासे विनिर्मुक्त होकर प्रमुदित हो। सब एक –दूसरेका हित चिन्तन करें। हमारा मन शुभमार्गमें प्रवृत्त हो तथा हमारी बुद्धि निष्कामभावसे स्वप्रकाश सदानन्दस्वरूप भगवान् श्रीहरिमें निमग्न हो।।"

श्रीमज्जगद्गुरु – शङ्कराचार्य
ऋग्वेदीय पूर्वाम्नाय श्रीगोवर्द्धनमठ, शङ्कराचार्यमार्ग, पुरी,
ओडिशा (भारत)

श्रीहरिः

श्रीगणेशाय नमः

पूर्वाम्नाय श्रीगोवर्द्धनमठ –
स्वस्तिप्रकाशनसंस्थानसे प्रकाशित पुस्तकें

१.शुकसुधा
२.श्वेताश्वतरोपनिषत् अध्याय १–३ (व्याख्यासहित)
३.श्वेताश्वतरोपनिषत् अध्याय ३–६ (व्याख्यासहित)
४.नासदीयसूक्तम् (सायणभाष्यानुवादसहित)
५.कुन्तीस्तुति: (विस्तृत व्याख्यासहित)
६ श्रीराधारस और रसिकशेखर
७ श्रीराधाससुधा और श्रीकृष्णरसवैभव
८.पीठपरिषद् और उसके अन्तर्गत आदित्यवाहिनी और आनन्दवाहिनी
९.सुखमयजीवनका सनातनसिद्धान्त
१०.विश्वशान्तिका सनातनसिद्धान्त
११.स्वस्तिकगणित
१२.सार्वभौमसनातनसिद्धान्त
१३.सारार्थदीपिका

१४.शारीरकस्वाराज्यसिद्धिसारसमाख्या
१५.सनातनधर्मियोंका रसरहस्यमय बहुदेवादिवाद
१६.जीवनज्योति
१७.शिवावतार भगवत्पाद आदि शङ्कराचार्य
१८.गीताजयन्ती और भीष्मोत्क्रान्ति
१९.अनमोलवचन
२०.नीति और अध्यात्म
२१.नीतिसूक्तम्
२२.आयुर्विज्ञान
२३.अध्यात्मरहस्य
२४.श्रीमद्भगवद्गीतामें योगचतुष्टय
२५.सनातनसन्देश
२६.व्रतस्वरूपविमर्श
२७.बालजागरण
२८.श्रीमद्भगवद्गीतामें कर्मतत्त्व
२९.श्रीमद्भगवद्गीतामें पुरुषार्थ चतुष्टय
३०.नीतिचालीसा
३१.श्रीजगन्नाथ और उनकी रथयात्रा
३२.व्यूहरचना
३३.अङ्कपदीयम्
३४.गणितदर्शन
३५.पावनसन्देश
३६.दिग्दर्शन
३७.राष्ट्ररक्षा

३८.परमार्थसार
३९.ब्रह्मज्ञानावलीमाला
४०.करुणा, कठोरता और कर्त्तव्यनिष्ठा
41.The Eternal Principles Of Happy Life
४२.श्रीमद्भगवद्गीतामें ज्ञानतत्त्व
४३.क्रान्तिबिन्दु
४४.दिव्यानुभूति (प्रथम भाग)
४५.अवतारमीमांसा
४६.विचित्र सम्वाद
४७.वैदिकार्षगणित (प्रथम भाग)
४८.प्रवचनपीयूष
४९.बौद्धागमवृत्तान्त तथा निगमागमसिद्धान्त
५०.नमो नमः श्रीगुरुपादुकाभ्याम्
५१.गणितचिन्तामणि
५२.चतुराम्नाय – चतुष्पीठ
53.The Philosophy of Mathematics
54.Swastik - Ganita
55.Nature of Numbers
56..Bhagawan Shree Krisna
५७.श्रीगीतासुधा
५८.श्रीराधासुधा
५९.जगदीश्वर, जीव और जगत्
६०.भागवतसुधा
६१.श्रीजगन्नाथाष्टकम्

६१.श्रीजगन्नाथाष्टकम्
६२.श्रीसागर – गङ्गा – आरती
६३.ऋग्वेदीय पूर्वाम्नाय – गोवर्द्धनमठ – पुरीपीठ
६४.भगवान् श्रीकृष्ण (हिन्दी अनुवाद)
६५.वैदिक बौद्धदर्शन (वैदिकार्षप्रक्रियाप्रकाश)
६६.शून्यैकसिद्धि और द्वयङ्कपद्धति
६७.सनातनधर्म
६८.Sanatan - Dharma
६९.Ganita Chintamani
७०. पूर्वाम्नाय – पुरीपीठ – परिचय- प्रदीप
७१. उद्बोधन
७२. सनातनधर्म – प्रश्नोत्तर – मालिका
७३. भावनोपनिषत् (भाष्यानुवादसहित)
७४. श्रीदक्षिणामूर्त्यष्टकम् (भाष्यानुवादसहित)
७५. योगमीमांसा (सूत्रानुवाद तथा व्याख्यासहित)
७६. स्वस्तिक गणित (अङ्ग्रेजी अनुवाद)
७७.शून्यैकसिद्धि और द्वयङ्कपद्धति (अङ्ग्रेजी अनुवाद)
७८.द्वयङ्कपद्धतिकी वैदिकार्षविधा
७९.धर्मस्मृतिः
८०.बौद्धसिद्धान्त और वेदान्त
८१.भारत – वैभव
८२.वेदान्तरससार – सर्वसिद्धान्तसमन्वयप्रकार
८३.सनातनसिद्धान्त
८४.द्वयङ्कादिपद्धतिकी वैदिकविधि
८५.श्रीशिवावतार भगवत्पाद आदि शङ्कराचार्य

८६.हस्तामलकस्तोत्रम्
८७.तोटकस्तुति:
८८.मूकाम्बिकास्तुति:
८९.श्रीहरिशङ्करस्तुति:
९०.स्वरूपसिद्धि:
९१.गणितसूत्रम्
९२.अभियान
९३.वैदिकार्षप्रक्रियाप्रकाश (वैदिक बौद्धदर्शन)
९४.द्रुतविलम्बितगणित
९५.पाण्डवचरित

यथाशीघ्र प्रकाशन सम्भावित

२४.श्रीमद्भगवद्गीतामें योगचतुष्टय, ३०. नीतिचालीसा, ४९.बौद्धागमवृत्तान्त तथा निगमागमसिद्धान्त, ६१.श्रीजगन्नाथाष्टकम्, ७०. पूर्वाम्नाय - पुरीपीठ - परिचय- प्रदीप, ७३.भावनोपनिषत् (भाष्यानुवादसहित), ७४. श्रीदक्षिणामूर्त्यष्टकम् (भाष्यानुवादसहित), ७५. योगमीमांसा (सूत्रानुवाद तथा व्याख्यासहित),७९.धर्मस्मृति;, ९३.वैदिकार्षप्रक्रियाप्रकाश (वैदिक बौद्धदर्शन).

सच्चिदानन्द आश्रम . मैसूर (कर्नाटक) . पौषकृण ८,गुरुवार, २०६८. तदनुसार १५ दिस. २०११.